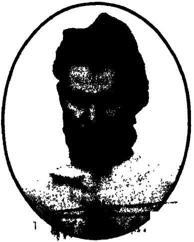
चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज की
131वीं जन्म जयन्ती-संयम वर्ष पर प्रकाशित

संयम साधना के प्रतीक, स्व-परहित चिन्तक

बाबा लालमन दास



डॉ. सुरेशचन्द्र जैन

प्रकाशक
प्रकाशचन्द शीलचन्द जैन ज्वैलर्स
चांदनी चौक, दिल्ली-110006

प्रथम आवृत्ति - 2500

संस्करण - 2003

मूल्य - अध्ययन-मनन

मुद्रक - शकुन प्रिन्टर्स, नई दिल्ली-110002

प्राप्तिस्थान :-

1. प्रकाशचन्द शीलचन्द जैन ज्वैलर्स, चांदनी चौक, दिल्ली-110006
2. शीलचन्द जैन, "मित्र भवन", 11 दरियागंज, नई दिल्ली-110002
3. सुरेन्द्रकुमार जैन, एन-35, ग्रीनपार्क एक्स., नई दिल्ली-110016

संयम साधना के प्रतीक स्व-परहित चिन्तक
बाबा लालमन दास



उत्तर भारत के नगरों में, कस्बों में गांव गांव में,
पुण्य-विहार किया बाबा ने, कहीं धूप कहीं छांव में।
भक्ष्य-अभक्ष्य-विवेक जगाया, मानवता को मान दिया
प्रबल अंधविश्वासों का तम, दूर किया सद्ज्ञान दिया॥

क्या-कहां

अपनी बात

समय की तरह ही सन्त को बांध-पाना असम्भव है। उम्र के 83 वंसत पार करने के बाद भी, मां के द्वारा बाबा श्री लालमनदास के अलौकिक व्यक्तित्व और उनके जीवन से सम्बन्धित अनेक बातें स्मृतिपटल पर ज्यों की त्यों मौजूद हैं। उन्होंने कहा था, बेटा! अपने इस इलाके में एक बाबाजी थे, जिन्होंने गृहस्थ धर्म भी निभाया था और जब मोक्ष मार्ग के राही बने तो पूरा जीवन धर्म-कर्म के साथ वीतराग जिन-धर्म की प्रभावना में बिता दिया। उनकी आत्मीयता और निश्छल बातों पर लोगों को सहज ही विश्वास हो जाता था। देव दर्शन-पूजन, रात्रिभोजन और अभक्ष्य त्याग को वे पूरा महत्व देते थे। अनेक स्थानों पर लोगों ने उनके कहे अनुसार जीवन-यापन कर अपना कल्याण किया था। उनके जीवन में धर्म के प्रभाव से अनेक चमत्कार भी हुए, पर उन चमत्कारों से निर्लिप्त बाबा आत्म-कल्याण में ही रत रहे। मां ने तो दूसरी पंक्ति में बाबा की प्रतिछाया को देख कर उनके प्रति श्रद्धा से माथा झुक जाता है।

सचमुच में, सद्‌गृहस्थ का जीवन भी अनेक उतार-चढ़ावों से भरा होता है। कर्मोदय का फल तो सभी को भोगना पड़ता है, परन्तु धर्म-साधना से उत्पन्न समताभाव उतार-चढ़ाव की स्थितियों में दृढ़ता प्रदान करता है। यद्यपि धर्म को कठिन साधना मानकर लोगों की प्रवृत्ति नहीं बन पाती, जबकि संसारिक कार्यों में सहज प्रवृत्ति पायी जाती है। वस्तुतः दृढ़-श्रद्धान और निरन्तर अभ्यास कठिन से कठिन साधना को भी, सरल बना देता है। इसका जीवन्त उदाहरण है—बाबा लालमनदास का जीवनवृत्त।

यद्यपि संत का जीवन, क्षेत्र-काल की मर्यादा से परे होता है, फिर भी, विशेष रूप से जिन क्षेत्रों में संत का विहार होता है, उस क्षेत्र में रहने वालों को पुण्य-संचय का सुयोग-अनायास ही मिल जाता है। और, जिन्हें

नहीं मिल पाता वे उनके परोक्ष व्यवितत्व और कृतित्व को स्मरण कर, पुण्य-संचय करते हुए आत्म-कल्याण की प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होते हैं। दो दशक पूर्व उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को पद्यात्मक रूप में पं. ताराचन्द जैन ने बाबा को जीवंत किया था। इधर कुछ समय से बाबा के जीवन के अलौकिक व्यक्तित्व से लोग प्रेरणा ले सकें, इसके लिएं गद्यात्मक शैली में प्रस्तुत हो, ऐसा भाव जाग रहा था। मुझे प्रसन्नता है कि बाबा के व्यक्तित्व और कृतित्व को डॉ. सुरेश चन्द जैन ने शब्दों के माध्यम से साकार किया है। उनका यह प्रयास कितना सार्थक है यह सुधी-पाठकों की दृष्टि पर निर्भर है। मैं डॉ. जैन के इस प्रयास को बाबा जी के प्रति विनयांजलि स्वरूप मानता हूँ और उनको साधुवाद देता हुआ उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

श्रमण मुनि-परम्परा के उन्नायक परम पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज ने तप-संयम और साधना की जो मशाल जलायी थी, उससे पूरी परम्परा आज भी उपकृत है। काल-दृष्टि से बाबा लालमनदास ने धर्म-कर्म की मशाल ऐसे समय में जगायी थी, जब पश्चिम-उत्तरभारत में संयम-साधना के प्रतीक मुनियों का विहार नहीं होता था। आचार्य श्री की 131वीं जन्म-जयंती पर, बाबा के अवदानों को स्मरण करते हुए दोनों अलौकिक व्यक्तित्वों को सादर-विनयाञ्जलि प्रस्तुत करता हूँ और भावना भाता हूँ कि मेरा शेष जीवन उनके दिव्य-अवदानों से आलोकित होता रहे और मुझे आत्मबोधि का लाभ प्राप्त हो।

श्री सुभाष जैन शकुन प्रकाशन जो धर्म निष्ठ, समाजसेवी एवं सुधी श्रावक हैं। उन्होंने इस कार्य में मुझे पूरा सहयोग देकर पुस्तक को मनोहारी रूप में प्रस्तुत किया है। मेरा आशीर्वाद है कि वे अपने जीवन में निरंतर प्रगति करते रहें।

विश्वास है कि पाठक इस लघु-कृति से धर्ममय जीवन के लिए प्रेरणा लेगें और स्व-पर कल्याण में प्रवृत्त होंगे।

-शीलचन्द्र जैन

स्व-पर हितचिन्तक

बाबा लालमन दास

उत्तर भारत : आदर्श पुरुषों की उर्वरा भूमि

आर्यावर्त के रूप में प्रसिद्ध भारत देश, जिसमें अनेक लोकोत्तर पुरुषों ने जन्म लिया और जनमानस में व्याप्त लोकभय, परलोक भय और आकस्मिक भयों से छुटकारा पाने का मार्ग प्रशस्त किया। इन महापुरुषों को जन्म देने का श्रेय उत्तरभारत को प्राप्त है-24 तीर्थंकर और मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रसिद्ध बलभद्र राम, नारायण कृष्ण आदि ने युग के अनुरूप लोगों की दशा और दिशा बदलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। इतना ही नहीं, उत्तरभारत का पश्चिमी क्षेत्र अनेक पौराणिक आख्यानों का जन्मदाता भी रहा है। जहाँ जैन परम्परा के 16वें तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ, 17वें तीर्थंकर भगवान् कुन्थुनाथ और 18वें तीर्थंकर भगवान् अरहनाथ के गर्भ-जन्म-तप कल्याणकों से तथा 19वें तीर्थंकर भगवान् मल्लिनाथ के समवसरण की रचना से यह भूमि पवित्र हुई, वहीं स्वार्थान्धता के कारण महाभारत जैसे महायुद्ध के बीज भी इस भूमि पर पड़े।

परिवर्तन-शील संसार में द्रव्य, क्षेत्र काल भाव और भव का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। महाभारत कालीन राग-द्वेष जनित कलह का प्रभाव इतना व्यापक हुआ कि जब मातृ-पितृ भक्त-श्रवणकुमार अपने अंधे माता-पिता को यात्रा कराते हुए, इस क्षेत्र में आया तो उसकी भावभूमि पर आश्चर्यजनक परिवर्तन आया और उसने आगे की यात्रा कराने को मना कर दिया। तब

वृद्ध माता-पिता ने पूछा था-बेटा! यह कौन सा क्षेत्र है? उत्तर मिला-मयराष्ट्र! तब उन्होंने बेटे से आग्रह किया कि बेटे! इतनी यात्रा करा दी, कम से कम गंगा तो पार करा दे, फिर तेरी जैसी मर्जी हो, वैसा करना। बेटे ने बात मान कर, हस्तिनागपुर से आगे गंगा नदी पार करायी थी। गंगा-पार होते ही जब माता-पिता ने कहा--बस, बेटा! अब हमें यही छोड़ दो तो बेटे का उत्तर था-कि क्यों छोड़ दूँ। मैं तो पूरी यात्रा कराकर ही मानूँगा।

इस किंवदंती से इतना संकेत तो मिलता ही है कि मनुष्य के मनोभावों को क्षेत्र में पूर्व घटनायें भी प्रभावित करती हैं। चूँकि कौरव-पाण्डवों के बीच अनेक कोशिशों के बाद भी कोई सुलह न हो सकी थी और अन्ततः महायुद्ध जैसी भयानक स्थिति के बीज यहीं अंकुरित हुए थे। तीर्थंकरों के कल्याणकों से पवित्र भूमि स्वार्थन्धता के कारण कलुषित तो हुई, परन्तु उसकी पवित्रता पूरी तरह नष्ट न हो सकी। इसे तीर्थंकरो द्वारा प्राणि मात्र के उत्थान की सर्वोदयी भावना का प्रतिफल ही समझना चाहिए कि उस पवित्र-भूमि का स्पर्श जाते ही श्रवणकुमार के मन में उत्पन्न कलुषित भाव विलीन हो गए।

उत्तर पश्चिम स्थित पुराण कालीन मयराष्ट्र ही वर्तमान में मेरठ क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है। स्वतंत्रता आंदोलन का श्री गणेश करने का गौरत्र इसी नगर को प्राप्त है। सन् 1800 के पूर्व मेरठ जनपद का विस्तार इतना नहीं था जितना वर्तमान में है। अंगरेजी राज्य के समय सेना की छावनी होने से इस नगर को अधिक महत्त्व मिला। मेरठ, आस-पास के क्षेत्रों के लिए व्यवसायिक केन्द्र भी रहा।

चाहे मुग़ल काल रहा हो या ब्रिटिश काल, दिल्ली देश की राजधानी रही और राजधानी के समीप होने से भी इस क्षेत्र को प्रमुखता मिलती रही। 1857 के गदर की शुरुआत होने से भी इस क्षेत्र की ख्याति-दूर-दराज के क्षेत्रों तक फैली। एक प्रकार से पूरे देश में मेरठ नगर प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। स्वाभाविक भी है। एक घटना, जिसका प्रभाव दूरगामी और

ऐतिहासिक रहा हो, वह परम्परा से लोगों के दिल में जगह बनाने में कामयाब रहती है। आखिर, ऐसी ही अनेक घटनाओं और दुर्घटनाओं से संसार-चक्र चलता है। वस्तुत: किसी घटना का होना अपने आप में न तो अच्छा है और न ही बुरा है । एक घटना हमें सुख प्रदान करती है तो दूसरी दुख। यह सब हमारी दृष्टि पर निर्भर करता है। हाँ, इतना अवश्य है कि जिन घटनाओं से लोक-हित और धर्महित की सिद्धि होती है, वह हमेशा स्मृति में रहती है और जिससे लोक-मर्यादा भंग होती है, अधर्म का बोलबाला होता है, उसे भूल जाना ही हितकर समझा जाता है। राम-रावण के मध्य राम को ही नित्य स्मरण किया जाता है रावण को नहीं, क्योंकि उसके आचरण से एक लोकमर्यादा भंग हुई थी। लोक का अहित हुआ था। आज राम आदर्श पुरुष है तो रावण निंद्य। आखिर, आचरण ही तो मनुष्य को आदर्श और निंद्य बनाता है।

धन्य हुआ परिवार

150 वर्षों का धार्मिक एवं सामाजिक इतिहास देखें, तो इस अवधि में अनेक घटनायें हुई, जिनका जन-जीवन पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। उन घटनाओं में सन् 1860 में, मेरठ नगर के तीरगरान मोहल्ले में एक घटना घटी। घटना स्थल था-लाला काहनामल (कान्हामल) का निवास-स्थान। एक शिशु ने जन्म लिया। काहनामल का घर-आंगन खुशियों से झूम उठा। माता-पिता को लोगों ने भरपूर बधाईयाँ दीं। बधाई-गीत गाए गये और लाला जी अपने भाग्य और पुण्योदय को सराहने लगे। पुण्यफल की प्राप्ति से प्रसन्नचित्त होकर उन्होंने सभी की बधाईयाँ-स्वीकारी। संसार में भला कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो संतान प्राप्ति से प्रसन्न न हो, स्वयं को धन्य न माने। संसार और कुलपरम्परा तो पुत्र से ही चलती है। सो, लाला जी भी प्रसन्न थे, परन्तु मात्र लाला-सेठ ही नहीं थे, अपितु उनका हृदय तत्त्वज्ञान से भी आलोकित था।

धर्मनिष्ठ, सच्चरित्र, शान्तचित्त, उदारमना और न्याय नीति से व्यापार

करने के कारण लाला काहनामल आस-पास के क्षेत्रों में सद्गृहस्थ के रूप में जाने जाते थे। समाज में उनकी अच्छी-खासी प्रतिष्ठा थी। सद्गृहस्थ के योग्य कार्यों को करने में उन्हें प्रमाद नहीं होता था। देव-पूजा, गुरु उपासना, स्वाध्यांय, संयम, तप और सत्पात्रों को दान देने में स्वयं को अनुरक्त रखते हुए वे जीवन-यापन करते थे।

प्रथम पुत्र की प्राप्ति होने से, योग्य समय पर उसके नाम-संस्कार की उन्होंने भरपूर तैयारी की और ज्योतिषी-पण्डित जी को बुलाकर, शिशु का उचित नाम सुझाने का अनुरोध किया। पण्डित जी ने जन्म-समय और ग्रहदशा को देखा और विस्मय से चकित होकर कभी लाला जी को देखते तो कभी जन्मचक्र को। प्रसन्नता से उनके मुख-मण्डल पर लालिमा तैर आयी। तभी लाला जी ने पूछा-पण्डित जी! सब ठीक तो है न! पण्डित जी बोले-अरे लाला जी! आप धन्य हैं, अतिशय पुण्यशाली हैं। आपके यहाँ तो लाल हुआ है, लाल। यह न केवल आपका नाम रोशन करेगा, बल्कि लोगों के दुःख-दर्द दूर करने में सहायक होगा। दुःखों से छूटने का रास्ता सुझायेगा। समय-समय पर अपनी संयम-चर्या से लोगों को चमत्कृत भी करेगा।

लाला जी टकटकी लगाकर पण्डित जी की भविष्यवाणी सुन रहे थे। न जाने, कब लाला जी के विचारों की कड़ी दूर कहीं पुराणों में खो गयी। जहाँ राजा सिद्धार्थ द्वारा महारानी त्रिशला को दृष्ट स्वप्न फल बतलाये जा रहे थे कि तेरा पुत्र महान् होगा, तीन लोक का स्वामी होगा। प्राणिमात्र का कल्याण करने वाला होगा। ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ तो उसके-चरणों की दास होंगी। देव-देवेन्द्र उसकी पूजा करेंगें। आज तू धन्य हो गयी और तेरे साथ मैं भी धन्य हो गया।

लाला जी को विचारों में खोये देखकर पण्डित जी ने उन्हें झककोर कर कहा, लाला जी। कहाँ खो गए? विचारों की कड़ी टूट गयी और पण्डित जी के कथन कानों में सुनायी दिये-लाला जी! आपका पुत्र तो

लाल है। बड़े पुण्य से ऐसा पुत्र मिलता है, इसका नाम **लालमनदास** रखना उचित होगा। लाला जी ने सहमति में सिर हिलाया और पण्डित जी का उचित आदर-सत्कार करके उन्हें विदा किया।

आज लाला जी इतने प्रसन्न थे कि यदि उनकी सामर्थ्य होती तो पूरे जनपद के लोगों की मुंह मांगी मुराद पूरी करते, फिर भी, अपनी सामर्थ्य के अनुसार आस-पास के दीन-दुखियों में मिठाई बांटी और उनकी आवश्कता की चीजें उपलब्ध करायीं।

सन्ध्याकाल श्री मन्दिर जी में दर्शन करते हुए भी नवजात पुत्र के विषय में पण्डित जी की भविष्यवाणी कानों में गूंजती रही। उन्होंने भावना भायी कि हे प्रभु! जैसी पण्डित जी ने भविष्यवाणी की है, वैसा ही मेरा लालमन निकले। सच्चरित्र, ईमानदार, धर्मनिष्ठ, कर्तव्यपरायण और पर दु:ख कातर। पण्डित जी ने ठीक ही कहा था कि बड़े पुण्य उदय से ऐसा पुत्र मिलता है, जो स्वयं अपना उद्धार करे और दूसरों के उद्धार की भी चिन्ता करे। प्रभु! मेरा पुत्र कभी न्याय मार्ग से न डिगे। हर्ष और विषाद के क्षणों में उसका साहस बना रहे। समभावी हो। मैं जानता हूँ प्रभु! कि जो भी होगा उसके पूर्व जन्मों में किये गए कर्मों के अनुसार होगा, उसमें मैं क्या, कोई भी कुछ नहीं कर सकता। मैं तो निमित्त मात्र हूँ। सच तो यह है कि संसार में सभी एक दूसरे का निमित्त बनकर कार्य-साधक बनते हैं। फिर भी, उल्लास और आनंद के क्षणों में भी, मेरी यही भावना है। आपके समक्ष अपने भावों को व्यक्त करने का यही प्रयोजन है कि आप तो मंगलमय, सर्वोत्तम और शरणभूत है। जैसे मुझे आजतक शरण मिली है उसी तरह मेरे पुत्र को भी आपकी शरण मिलती रहे। यही विनय है। अनेक शुभ-भावना भाते, जिस समय लाला जी घर लौटे तो आनंद और उल्लास का संगीत विराम ले चुका था।

पूत के पांव पालने में

द्वितीया के चन्द्रमा के समान शिशु लालमन बढ़ने लगे। बाल-सुलभ

उसकी किलकारियों और चंचलता से माता-पिता प्रसन्न होते। आस-पास के लोग भी उसकी बाल सुलभ क्रीड़ाओं से खुश होते। जैसे-जैसे वह बड़ा हुआ, पूरा तीरगरान मोहल्ला उसकी विनय और शालीन व्यवहार से प्रसन्नता का अनुभव करने लगा। नित्यप्रति देवदर्शन करना और उसके दयाभाव को देखकर माता-पिता की खुशी का ठिकाना न था। धीरे-धीरे लालमन कब पाठशाला जाने योग्य हो गया यह मालूम ही न पड़ा।

पाठशाला में नाम दर्ज करा दिया गया और बालक लालमन अब पढ़ने जाने लगा। लालमन की बुद्धि और प्रतिभा देखकर सभी शिक्षक चमत्कृत हो गए। जहाँ गुरुजन उसके सरल सच्चे व्यवहार और शीघ्रता से पाठ को समझ लेने की योग्यता से प्रभावित थे, वहीं सहपाठी भी उसकी योग्यता का लोहा मानते थे, परन्तु कभी उसने रौब गांठने की कोशिश की हो या किसी को सताया हो ऐसी कोई-शिकायत माता-पिता को नहीं मिली। उल्टे उसकी प्रशंसा ही सुनने को मिलती। पाठशाला आते-जाते वक्त बड़ों के प्रति विनय प्रगट करना नहीं भूलने से वे जल्दी ही सभी के चहेते बन गए। पूरा तीरगरान उनकी प्रशंसा के पुल बांधता नजर आता। स्त्रियाँ अपने ऊधमी बच्चों को समझांती, देखो! लालमन जैसे बनो। उधम करने से कुछ नहीं होगा। पढ़ने-लिखने में मन लगाओ। वैसे भी यह वह समय था, जब बात-बात पर बच्चों को पढ़ने-लिखने की ताकीद दी जाती थी। एक प्रचलित मुहावरा लोगों की जुबान पर था और जब-तब उसका प्रयोग धड़ल्ले से किया जाता था–

पढ़ोगे लिखोगे बनोगे नवाब।
खेलोगे कूदोगे होगे खराब॥

बाल-सुलभ चपलताओं के बीच लालमनदास पिता काहनामल और माता द्वारा दिए गए संस्कारों का पालन करना कभी न भूलते। नित्य देवदर्शन करना उनका स्वभाव बन गया था। दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर मंदिरजी जाते और भगवान् का दर्शन करते और तब पाठशाला को

जाते। ठीक ही कहा गया है कि मां के गर्भ में ही शिशु संस्कारित हो जाता है। परिवार, बालक की पहली पाठशाला और मां पहली शिक्षक होती है। इसीलिए गर्भवती महिलाओं को अच्छे विचारों और सच्चरित्र महापुरुषों के जीवन-चरित्र का चिंतन-मनन करने को कहा जाता है। आचार्य कुन्दकुन्द की मां ने भी तो बालक कुन्दकुन्द को पालने में ही शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि का पाठ पढ़ाया था, वही आगे चलकर जैन परम्परा के ऐसे आचार्य हुए कि उनका नाम मंगलाचरण के रूप में प्रयुक्त होने लगा–

'मंगलं भगवान् वीरो मंगल', मंगलं गौतमोगणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्।।

ऐसे ही, धार्मिक संस्कारों से लालमन को माता-पिता ने संस्कारित किया था।

धीरे-धीरें, परन्तु बहुत ही थोड़े समय में, लालमनदास ने अपनी लौकिक-शिक्षा पूरी कर ली। साथ ही, निरंतर रात्रि पाठशाला में जाते जाते धर्मशास्त्रों के भी अच्छे ज्ञाता हो गए। अब तो उन्हें स्वाध्याय करने-कराने में रस भी आने लगा। वह प्रतिदिन शास्त्र सभा में जाते और तत्त्वचर्चा में भाग लेते। इससे उन्हें आत्म-संतोष होता। साधु-समागम में तो उनकी चर्या ही बदल जाती। उनके साथ अधिक से अधिक वक्त गुजारना उन्हें अच्छा लगता। शास्त्रों के अनुसार धर्म के कार्यों को करने में कभी आलस्य न करना, उनकी आदत बन गई थी। भगवान् के दर्शन करते समय कभी प्रथमानुयोग के प्रसंग, तो कभी गुणस्थानों में होने वाले भावों के उतार-चढ़ाव, तो कभी चरणानुयोग की कथनी से अपनी तुलना करते और कभी द्रव्यानुयोग में की गई चर्चा उनके चित्त में उभरती रहती। लालमन की हमेशा यह कोशिश रहती कि उनके द्वारा किसी को कोई कष्ट न हो।

इस प्रकार देव-शास्त्र और गुरु की भक्ति और ज्ञानध्यान-आराधना में

अनुरागी होकर लालमन दास ने किशोर अवस्था में प्रवेश किया। कथनी-करनी की एकरूपता देखकर, मोहल्ला क्या, पूरे नगर की समाज उनकी प्रशंसा करता था। वे अब काहनामल के लाल ने होकर पूरी समाज के लाल समझे जाने लगे थे। जब भी उनके हम-उम्र किशोरों की चर्चा होती तो सबकी जुबान पर लालमन दास का नाम होता। इस प्रशंसा से उनमें कोई मान का भाव जागा हो यह उनके आचरण से कभी नहीं झलका। सबके द्वारा की गई अधिक प्रशंसा को भी वे सहज भाव से ग्रहण करते। तत्त्व-अभ्यास के कारण प्रशंसा को सांसारिक प्रवृत्ति मानते हुए वह सोचते कि मान जीवन के लिए घातक है, नीचगति की ओर ले जाने वाला है। जब कभी ऐसा अवसर भी आया और मान कषाय उन पर हावी होती नजर आयी तो कविवर द्यानतराय की पंक्तियाँ उनके चित पर उभर जाती–

मान महाविषरूप करहिं नीचगति जगत में।
कोमल सुधा अनूप सुख पावै प्राणी सदा।।

ऐसे समय में, त्रेसठ शलाका पुरुषों का जीवन-चरित्र भी उन्हें मानी होने से रोकता। उनके मन में भाव आता कि मैं जैन हूँ। कषाय तो बेड़ियाँ हैं और मुझे अंत में, मोक्षमार्ग की शरण में जाना है आदि-आदि विचारों की न टूटने वाली धारा किशोर हृदय में फूटने लगती।

उपस्थित हुआ सांसारिक सुयोग

इस बीच काहनामल को एक पुत्र रत्न की और प्राप्ति हुई, जिसका नाम उन्होंने ईशरीमल रखा। लालमन लक्ष्मण जैसा भाई पाकर प्रसन्न थे। ईशरीमल भी राम जैसे बड़े भाई की संगति और माता-पिता से संस्कारित होते हुए, वृद्धि को प्राप्त हुए। लालमन ने जब धीरे-धीरे जवानी की दहलीज पर कदम रखा तो माता-पिता और कुटुम्बी जनों के हृदय में कुलवधू लाने की उमंग उठने लगी। जब माता-पिता ने अपने चहेते लाल

को विवाह-बंधन में बंधकर गृहस्थ जीवन को सफल बनाने के लिए कहा तो लालमन सोचने लगे कि संसार की यही रीति है और उसे ज्यादा समय तब टाला नहीं जा सकता। सो, उन्होंने सहमति में सिर हिला कर मौन स्वीकृति दे दी।

अनुकूल कन्या की तलाश प्रारम्भ हुई। काहनामल को ज्यादा मशक्कत नहीं करती पड़ी। प्रत्येक कन्या का पिता ऐसे युवक को अपना दामाद बनाने में गौरव का अनुभव करता जो लालमन दास जैसा सच्चरित्र सद्गुणों की खान हो। शीघ्र ही, उन्हें ऐसी कन्या मिली, जिसमें उनके कुलवधू और जो लालमन की गृहिणी होने योग्य गुणों से युक्त थी। उचित समय और लग्न में लालमन दास विवाह-बंधन में बंध गए। धर्म पत्नी के आचार-विचार और प्रवृत्ति से उन्हें संतोष हुआ और भविष्य के प्रति निश्चिन्तता भी आयी कि उनके दाम्पत्य जीवन में भी, धर्म-कर्म में कोई बाधा न आएगी। गृहस्थ जीवन की व्यस्तता प्रारम्भ हुई, लेकिन दोनों धार्मिक क्रियाओं में अनुराग रखते हुए, गृहस्थ धर्म का पालन करने लगे।

लालमन दास तो प्रारम्भ से ही, धार्मिक क्रिया-कलापों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते थे। अब धर्मपत्नी की अनुकूलता और उसके धर्म निष्ठ स्वभाव के कारण उनकी धर्म-साधना और भी सहज हो चली। शास्त्र-स्वाध्याय और प्रवचन में अधिक से अधिक समय देने की कोशिश करने लगे। गृहस्थ जीवन में अनेक ऐसे अवसर भी आए जब उन्हें लगा कि उनकी गृहस्थोचित व्यस्तता धार्मिक-चर्या में व्यवधान उपस्थित हो रहा है तो दृढ़ता के साथ गृहस्थी के प्रपंचों की उपेक्षा कर देते और अपने मन को संयमित रखते। संत-समागम को अपना सौभाग्य समझते हुए तन-मन से उनकी सेवा करने को पुण्योदय मानते। यदि कोई दीन-दुखी सामने पड़ जाए तो उसके दुःख दूर करने की भरसक कोशिश करते। लालमन जप-तप और दीन दुःखी की सेवा करते हुए, संयम पूर्वक धर्म-साधना और प्राणिमात्र के प्रति दया का भाव रखकर सुखपूर्वक

जीवन-यापन करने लगे।

हर्ष-विषाद के क्षण

कालचक्र गतिमान रहा और गृहस्थ-जीवन भी चलता रहा। कालान्तर में, उन्हें एक कन्यारत्न की प्राप्ति हुई। कन्या की प्राप्ति से भी उन्हें वैसी ही प्रसन्नता हुई जैसे पुत्र होने पर होती। पुण्योदय से ही संतान-सुख मिलता है। उन्होंने उसका नाम 'सरूपी' रखा। सरूपी अपने माता-पिता को अपनी बाल-क्रीड़ाओं से आनन्दित करने लगी। धीरे-धीरे वह बृद्धिगंत हो ही रही थी कि असाता कर्म के उदय से पत्नी ने लालमन दास का साथ छोड़ दिया।

उनका मानना था कि धर्म में वह शक्ति है, जिससे वीतरागता आती है, आश्चर्यजनक सौभाग्य की प्राप्ति होती है, दीर्घजीवन मिलता है, ज्ञान मिलता है। धर्म से समय पर वर्षा होती है, अनेक सिद्धियां मिलती हैं, अशांत समुद्र भी शांत हो जाता है, चारों पुरुषार्थों की सिद्धि होती है। तप-संयम, शील-रुप धर्म का सेवन करना ही अब मेरे लिए उचित है।

आयी वियोग की घड़ी

धर्मपत्नी के वियोग से लालमन दु:खी तो हुए, परन्तु स्वाध्याय से प्राप्त ज्ञान ने उन्हें दृष्टि भी दी और ढ़ाढ़स भी दिया–जिसका संयोग होता है, उसका वियोग भी होता है। संयोगों और वियोगों का दूसरा नाम ही तो संसार है। जब अपना शरीर ही एक दिन साथ छोड़ देता है, तब सांसारिक सम्बंध से प्राप्त पत्नी को भी एक न एक दिन जाना ही था। स्त्री इष्ट थी, पुण्य से मिली थी, अपनी आयु पूरी कर चली गई, उसका जितना भी शोक करूंगा, आकुलता ही बढ़ेगी। पुण्य-पाप का मिला-जुला रूप संसार है। भला, क्या मैं अमर हूँ। जिसका जन्म होता है, उसका मरण भी होता है। मैं भी तो यम की डाढ़ के बीच बैठा हुआ हूँ। शोक से तो कर्म ही बंधेगा। मन में सरूपी का ख्याल आया। यह भी तो एक दिन ससुराल

चली जाएगी, फिर मैं अकेला ही तो बचूंगा। अपने जीवन को धर्म की शरण में अर्पित करने में ही मेरी भलाई है। धर्म की शरण से जीवन को सार्थकता मिलेगी। ऐसा दृढ़ निश्चय कर परम हितकारी धर्म की शरण को प्राप्त लालमन दास मंदिर, शास्त्र-स्वाध्याय में और अधिक समय देने लगे। आकस्मिक रूप से अनेक अप्रिय प्रसंग भी आये, कष्ट भी हुए, पर न तो अप्रिय प्रसंग उन्हें धर्म-मार्ग से डिगा सके और न ही विषय-वासना की आँधी अपने वश में कर सकी। गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए, संयमी जीवन बिताने लगे। ब्रह्मचर्य का पालन और जिनधर्म की प्रभावना में समय बीतने लगा। स्व-पर हित चिंतन लक्ष्य बन गया। समय-समय पर सत्पात्रों को दान देना न भूलते। साधु-समागम की प्रतीक्षा में रहते। समता-भाव से हर स्थिति का सामना करते हुए जीवन-यात्रा का नया क्रम चल पड़ा।

पाया सन्त समागम

एक दिन लालमन श्री मंदिर जी से जैसे ही चलने को हुए कि देखा-सामने एक विरागी क्षुल्लक जी आये हुए हैं। उनको देखते ही, मन में श्रद्धा उमड़ पड़ी। क्षुल्लक जी का मनोहर रूप और तप की अग्नि मे दमकता कुन्दन सा तेज देख लालमन श्रद्धा से इच्छामि कहकर, उनके पास बैठ गए। कुशल समाचार पूछा। मन में भाव उपजा कि जगत में साधु-समागम और भगवान् की भक्ति कितनी दुर्लभ है। जिसके जीवन में ये दोनों हों, उसका क्या कहना! साधु-संगति से दृष्टि मिलती है तो भगवान् की भक्ति से शान्ति। सुख-शान्ति की इच्छा के लिए ही तो सारे प्रयत्न किए जाते हैं। धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थ की सिद्धि भी भक्ति से सहज हो जाती है।

क्षुल्लक जी के साथ थोड़ा समय बीता ही था कि क्षुल्लक जी ने कहा-भैय्या। हमें स्टेशन पहुँचा दो या जाने का मार्ग बता दो। लालमन ने विनयपूर्वक कहा—आप चिंता न करें, मैं आपके साथ चलूंगा। पहले

आहार तो ग्रहण कर लें। क्षुल्लक जी ने कहा भैय्या। आहार तो कल ही ग्रहण करना है, आज तो सब चीज का त्याग है। क्षुल्लक जी उठे और लालमन उनके साथ हो लिए। रास्ते में, कुछ लोक की और कुछ शास्त्र की चर्चा चल पड़ी। क्षुल्लक जी ने कहा-कर्मों की विचित्र गति है। कर्मफल भोगते समय यह जीव अपने स्वभाव को भूल जाता है, परन्तु ज्ञानी नहीं भूलता यही तो ज्ञानी और अज्ञानी में अंतर है। जैसे अग्नि में तपाया गया सोना अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता वैसे ही परीषह-उपसर्ग रूप कर्मोदय होने पर ज्ञानी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता। सम्यग्दृष्टि जीव यह जानता है कि क्रोध से आत्मा अशांत हो जाती है, परन्तु जब क्रोध ही नहीं करेंगे तो आत्मा अपने शांत स्वरूप में रहेगी ही। उपसर्ग आने पर, जिसमें बर्दास्त करने की शक्ति होती है, वही सच्चा भेदविज्ञानी होता है। क्षुल्लक जी से ज्ञान की बात सुनते-सुनते, अचानक लालमन का ध्यान उनके तन पर गया, जो तपती धूप के कारण पसीना से तरबतर हो रहा था। सामने एक घना वृक्ष दिखा—लालमन ने कहा महाराज! थोड़ा विश्राम कर लें, फिर चलेंगें। क्षुल्लक जी बोले ठीक है, जैसा तुम कहो।

वृक्ष की घनी छांव में बैठते ही, लालमन ने क्षुल्लक जी का पसीना पोछा और वैय्यावृत्ति करने लगे। सेवा से मन प्रसन्न हुआ और आह्लाद की लालिमा चेहरे पर चमक उठी। लालमन दास की सेवा, भक्ति और सरलता से प्रसन्न क्षुल्लक जी ने कहा-अब तुम भी घर जाओ। भव्य हो, समझदार होने के साथ 2 सज्जन भी हो। तुम अपने जीवन में यश प्राप्त करो, यही आशीर्वाद है। इतना कहते ही, अचानक क्षुल्लक जी के मन में लालमन की परीक्षा का भाव जाग उठा, बोले लालमन! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। यदि तुम्हें धन-दौलत की कुछ इच्छा हो, तो मांग लो।

लालमन ने उत्तर दिया बाबा! धन दौलत की मुझे कोई इच्छा नहीं है। जितना जाना और समझा है, उसके अनुसार रत्नत्रय की मुझे प्राप्ति हो, यही कामना दिन-रात करता हूँ, क्योंकि यही यथार्थ धन है।

क्षुल्लक जी इस अप्रत्याशित उत्तर को सुनकर प्रसन्न हो गए। फिर-आशीर्वाद दिया भैय्या! तुम धर्म-निष्ठ और शास्त्र-अभ्यासी हो। तुम्हारी श्रद्धा-दृढ़ है। तुम अवश्य ही, यश प्राप्त करोगे। तुम्हें सिद्धि भी मिलेगी। इसी प्रकार धर्म-कर्म में चित्त लगाए रखना। तुम्हें जीवन में हर प्रकार की सफलता मिलेगी। स्टेशन समीप देखकर, क्षुल्लक जी ने लालमन को लौट जाने को कहा। लालमन मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे। क्षुल्लक जी को उनके गन्तव्य तक पहुँचाने और मार्ग में सेवा के अवसर मिल जाने से संतोष भी हुआ था। सो, आज्ञा लेकर, विनयभक्ति प्रदर्शित कर, घर की ओर लौट पड़े। आज लालमन इतने प्रसन्न थे जैसे उन्हें अचानक कोई खजाना मिल गया हो। दिन सफल होने का अहसास उन्हें रोमांचित कर रहा था। मन में विचारों की धारा बह रही थी और क्षुल्लक जी के शब्द कानों में गूंज रहे थे–

सुख-दुःख सभी तो कर्म के अधीन है। कालचक्र अपनी गति से चलता रहता है। जो जन्मता है, वह मरता है। युगों-युगों से यही तो करते आ रहे हैं और आगे भी यह क्रम चलता रहेगा। इसीलिए इस संसार को अनादि-अनिधन कहा जाता है जीव परिभ्रमण करता रहता है, जबकि संसार यथावत् चलता रहता है और हम नाना-संकल्प विकल्पों के मकड़जाल में फंसते चले जाते हैं। संकल्प-विकल्पों के जाल से छूटने का एक ही उपाय है कि गृहस्थ नित्य देवदर्शन-पूजन, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान में अपनी प्रवृत्ति बनाए रखे। इससे इस लोक और परलोक में सुख प्राप्त होता है। मेंढ़क की घटना तो याद होगी–जिस समय राजगृह नगर में विपुलाचल पर्वत पर भगवान् महावीर स्वामी का समवसरण आया था और महाराजा श्रेणिक आनंद भेरी बजवाते हुए नगरवासियों के साथ जिनेन्द्र भगवान् की पूजा को जा रहे थे, उस समय एक मेंढ़क, जो नागदत सेठ की बावड़ी में रहता था। पूर्वभव की स्त्री भविदत्ता को देखकर उसे जाति स्मरण हो गया था। भगवान् की पूजन के लिए मुख में

कमल दबाकर समवसरण की ओर चल पड़ा। रास्ते में, महाराज श्रेणिक के हाथी के पैरों तले कुचला गया और तब केवली जिनेन्द्र भगवान् की पूजन की भावना से ही स्वर्ग में देव हुआ और फिर आकर उसने जिनेन्द्र-पूजन किया। इसलिए देवदर्शन-पूजन के साथ-साथ अन्य आवश्यक धार्मिक कर्तव्यों से जीवन में सुख-शान्ति आती है।

क्षुल्लक जी का जीवन धन्य है। चलते-चलते कितनी अच्छी बात बता गए कि सम्यग्दृष्टि में बर्दास्त करने की शक्ति होती है। पार्श्वप्रभु पर कितने उपसर्ग हुए, पर वे अचल रहे। आत्म साधना में लीन रहे। कुमार अवस्था में, पाषण्डी साधु से छुड़ाकर जिस नाग-युगल को णमोकारमंत्र सुनाया था और जो देव-देवी हुए थे। वे अपने उपकारी के उपसर्ग दूर करने के निमित्त उपस्थित हुए और पार्श्वप्रभु को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई थी।

दृढ-श्रद्धान से क्या कुछ नहीं हो सकता। जब तक मैं सच्चे वीतराग-मार्ग पर चल नहीं पड़ता, तब तक हे प्रभु! उस मार्ग का दृढ़ श्रद्धान बना रहे यही भावना और कामना है।

तुममें हममें भेद यह, ओर भेद कछु नाहिं।
तुम तन तज पर ब्रह्म भये, हम दुविधा जगमाँहि॥

क्षुल्लक जी के साथ बिताए क्षणों की स्मृति संजोये कब तीरगरान आ गया और कब घर आ गया। लालमन को यह महसूस ही नहीं हुआ।

प्रगट हुई वचनसिद्धि

गंगा के विशाल तट पर बसा गढ़मुक्तेश्वर, जहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता था और दूर-दराज से हजारों की संख्या में लोग वहाँ आकर गंगा-स्नान करते। उस मेले में सैकड़ों व्यापारी भी आते और अच्छा मुनाफा कमाते थे। एक वर्ष उनके साझीदार-साथियों ने लालमन को वहाँ जाने के लिए तैयार कर लिया। नियत-तिथि और समय पर बैलगाड़ी में सामान लादकर

गढ़मुक्तेश्वर की ओर रवाना हुए। साझीदारों को बैलगाड़ी में बैठा दिया और स्वयं बैलगाड़ी के साथ-साथ चलने लगे। चलते-चलते, लालमन सोचने लगे मोह कर्म का उदय कितना बलवान् है। इस मोह के कारण ही प्राणी त्याग की ओर कदम नहीं उठा पाता। दुविधा में जीवन को यों ही गंवा देता है। अनेक अपमानों को सहता हुआ भी नहीं चेत पाता। ठीक वैसे ही, जैसे समुद्र की तरंगों में फंसा जीव ज्वार-भाटा को सहन करता रहता है। मोह के कारण परिग्रह होता है और परिग्रह वह मकड़-जाल है, जिसमें फंसकर दुर्लभ नर-जीवन व्यर्थ गंवा देता है। ऐसे न जाने, कितने विचार उभरते और चिंतन करते-करते मार्ग पर कदम-दर कदम आगे बढ़ाते जाते थे। रात्रि का घना अंधकार अपने पांव पसारने लगा, हाथ को हाथ न सूझे ऐसे अंधकार में भी बढ़े जा रहे थे। सहसा बादल घिर आए और रहा सहा मार्ग भी दिखना बंद हो गया। आखिर, गाड़ी की लीक ही एक मात्र आगे बढ़ने का सहारा बनी। भगवान् का स्मरण करते हुए लालमन चले जा रहे थे कि अचानक गाड़ी का पहिया टूट गया। साझीदार गाड़ी से उतरे और माथा ठोंककर सोचने लगे कि अपना तो भाग्य ही खोटा है। पहिए को भी अभी ही टूटना था। भयानक जंगल और सुनसान इलाका। कहीं कुछ गड़बड़ न हो जाय यह आशंका मन में आते ही, लालमन दास से बोले–भैय्या! यह बहुत बड़ी विपत्ति में हम लोग घिर गए, अब क्या होगा? यह तो कोढ़ में खाज वाली बात हो गई। एक तो घनी काली अंधियारी रात और सुनसान जंगली इलाका, उस पर गाड़ी का पहिया टूटना। अब तो, समय पर गढ़मुक्तेश्वर पहुंचना सम्भव न हो सकेगा। अब क्या करें?

लालमन दास ने साथियों की बात शांत चित्त से सुनी और उन्हें ढ़ाढस बंधाया–घबराओ मत। घबड़ाने से कुछ नहीं होगा, बल्कि और विपत्तियों में पड़ जायेंगें। शान्ति से सोचने पर कोई न कोई मार्ग अवश्य निकल आयगा। वैसे भी, जो होनी है, वह तो होकर रहेगी। मनुष्य को अपने किए

का फल भोगना ही पड़ता है। कर्मों के आगे किसी की नहीं चलती। सुख-दुख दोनों ही अपने पुण्य-पाप के फल हैं। जन्म है तो मरण है, ठीक वैसे ही जैसे दिन है तो रात और रात है तो दिन। यह तो हमारे पूर्व जन्म के दुष्कर्मों का फल है। भला, संसार में संकट के समय कौन काम आता है? मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि संकट के समय भगवान का स्मरण और उनकी स्तुति से सभी संकटों से मुक्ति मिल जाती है। हमें धैर्यधारण करते हुए भगवान् का स्मरण करना चाहिए तब-तक कोई-न-कोई मार्ग निकल ही आएगा।

निरुपाय होकर, दोनों साथी चिंतामग्न हो गए। लालमन भगवान् का स्मरण करते हुए कुछ दूर आगे-पीछे उस घनी अंधियारी रात में कुछ देखने का असफल प्रयास करते, पर कुछ दिखायी न देता। कुछ कदम आगे बढ़ने पर, लालमन को सहसा दूर कहीं दीपक टिमटिमाता-सा नजर आया। साथियों को बुलाकर कहा-देखो! एक दीवा टिमटिमा रहा है, जरूर कोई गाँव है और आगे जैसे उनके अन्तर्मन से कोई आवाज फूट पड़ी हो—जाओ! देखो वहाँ एक चतुर खाती मिलेगा। जो हमें इस संकट से उबारेगा। चिंता मत करो। इस घने अंधकार में आशा की एक किरण सामने है, फिर जिनवाणी का कथन मिथ्या नहीं होता—होनहार होकर रहती है। भैय्या, आश्चर्य तो यही है कि सभी तो दुःख से डरते हैं, पर पाप से नहीं डरते। सुनो! अब चिंता छोड़ो, और जाओ। पर, ध्यान रखना, बनियागिरी मत कर देना। उसे कम पैसे देने की कोशिश हरगिज न करना, नहीं तो, वह यहाँ नहीं आवेगा। संकट की इस घड़ी में, वही आकर पहिया ठीक करेगा। अतः उसे जल्दी बुला लाओ। तब तक मैं यहीं गाड़ी की रखवाली करता हूँ। जिनेन्द्र भगवान् के स्मरण से शीघ्र ही, इस संकट से हम सबको निजात मिलेगी।

लालमन के कहे अनुसार दोनों साझीदार उस गाँव की ओर बढ़ चले और लालमन गाड़ी की रखवाली करते हुए गुनगनाने लगे—

भगवन्त भजन क्यों भूला रे!
यह संसार रैन का सपना, तन धनवारि बबूला रे।
-भगवन्त भजन........

इस जीवन का कौन भरोसा, पावक में तृण-तूला रे।
काल-कुठार लिये सिर ठाड़ा, क्या समझे मन फूला रे॥
-भगवन्त भजन........

स्वारथ साधै पांच पांव तू, परमारथ को लूटा रे।
कहुँ कैसे सुख पैये प्राणी, काम करै दुःख मूला रे॥
-भगवन्त भजन........

मोह पिशाच छल्योमति मारे, निज कर कंध वसूला रे।
भज श्री राजमतीवर 'भूधर' दो दुरमति सिर धूला रे॥
-भगवन्त भजन क्यों भूला रे।

रात्रि की नीरवता को कभी ये पंक्तियाँ भंग कर रही थी या जुगुनुओं की ध्वनि।

जल्दी ही, गाँव पहुंचकर, दोनों साथी खाती से मिले और सब हाल कह सुनाया। जल्दी चलो, हमें मेले में भी पहुँचना है। खाती ने सब हाल जानकर कहा-लाला! चार रुपये लूंगा। और कोई वक्त होता, तो शायद ही वे तैय्यार होते, परन्तु एक तो मेले में पहुँचने की जल्दी और उस पर आयी विपत्ति से मुक्ति पाने की चाह ने उन्हें खाती की बात मान लेने को विवश कर दिया। उन्हें लालमन की कही बात भी याद थी कि कोई-ना-नुकुर नहीं करना, वरना वह नहीं आवेगा। सो, उन्होंने इकरार में सिर हिलाते हुए कहा–ठीक है, जल्दी चलो। खाती आया और शीघ्र ही उसने गाड़ी का पहिया ठीक कर दिया।

गाड़ी ठीक होते ही, खाती की उजरत दे, वे उसका शुक्रिया अदा कर, फिर आगे चल पड़े और पौ फटते-फटते गढ़मुक्तेश्वर के गंगा तट पर

पहुँच गए। वहाँ पहुँचते ही, चौपाल-दुकान के वास्ते बांसो का बण्डल मंगाया। जैसे ही बांस गाड़ने के लिए उन्होंने गड्ढ़ा खोदना चाहा तो लालमन बोल उठे देखो! यहाँ गड्ढ़ा मत खोदो, इसके नीचे जमीन में नाग का जोड़ा है। यह सुनते ही, दोनों ही साझीदारों ने मजाक उड़ाते हुए कहा-ऐसे कह रहे हो जैसे बहुत बड़े ज्ञानी-ध्यानी हो। तुम्हे क्या पता कि यहाँ नाग का जोड़ा है। हम तो यहीं गड्ढ़ा खोदेंगे। यह कहकर लालमन दास की बात अनसुनी कर, गड्ढ़ा खोदने लगे। लालमन साथियों द्वारा की गई उपेक्षा से चुपचाप एक ओर हो गए। उन दोनों ने थोड़ी ही जमीन खोदी थी कि भयंकर काला नाग-युगल फुफकारते हुए निकला। अब तो साझीदारों की हवा ही खिसक गई। डर के मारे बेहाल हो गए और लालमन की ओर सहायता की याचना करने वाली दृष्टि से निहारने लगे। तब लालमन ने कहा-अब पछताने से क्या होगा? अब भी एक रास्ता है, वह यह कि इस नाग-युगल को दूर जंगल में कहीं छुड़वाने की व्यवस्था शीघ्र करो। गड्ढ़ा कहीं और खोदो। तब दोनों साथियों ने उस नाग-युगल को छुड़वाने का प्रबंध किया और दूसरी जगह गड्ढ़ा खोदकर दुकान लगाने की व्यवस्था की। मिठाई की दुकान खोली गई। जल्दी ही, पकवानों से दुकान को सजाया गया। तब लालमन ने अपने साथियों को कहा-देखो भाई! व्यापार में बेईमानी मत करना, नाप-तौल ठीक रखना। इससे कोई लाभ न होगा, उल्टे पाप लगेगा। वैसे भी लाख कोशिश कर लो, खर्च काटकर बचेंगें तो सिर्फ चार रुपये ही। यह सुनकर दोनों साथी लालमन को विस्मय से देखने लगे। मेले की रेलम-पेल में खूब मेहनत की, पर जब हिसाब लगाया तो लालमन के कहे अनुसार रुपये बचे चार ही।

लालमन की कही बात सच होते देखकर सोचने लगे कि इसे कैसे पहले ही पता चल गया कि चार रुपये बचेंगें। इसने जैसा-जैसा कहा, वैसा-वैसा ही हुआ। इसे कोई देवी-देवता तो सिद्ध नहीं हो गए। वे दोनों

यह सोच ही रहे थे कि लालमन ने कहा–देखो भाईयो! चार रुपये ही बचे हैं न, अब तुम दोनों इसे आपस में बांट लो। मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं तो तुम दोनों के कहने से आ गया था और मन में मेला देखने का कौतूहल भी था। अतः मेरे विषय में ज्यादा सोचने-विचारने की जरूरत नहीं है। वैसे भी हानि-लाभ सब पाप-पुण्य के उदय पर निर्भर करता है। अतः तुम्हें भी इस विषय पर ज्यादा सोचने की जरूरत नहीं है और हाँ, अब लौटने की तैयारी करो।

मेले से लौटकर जब साथियों ने लालमन के द्वारा कही गयी बातों को लोगों को बताया तो लोगों को सहसा विश्वास नहीं हुआ, फिर सोचने लगे कि धर्म-कर्म में लगे रहने से शायद उसे वचन-सिद्धि हो गयी हो। धीरे-धीरे सब कुछ सामान्य होने लगा। लालमन की उदासीनता बढ़ने लगी। रात-दिन यही ख्याल आता कि क्या मनुष्य जन्म इसीलिए पाता है कि रात-दिन सांसारिक सुख-दुखों को झेलते-झेलते संसार से विदा हो जाए। क्या नरकों के दुःख नहीं सहे? क्या स्वर्गों के सुख नहीं भोगे अब तक का सारा जीवन आशा निराशा, तृष्णा-भय के बीच नहीं गुजरा क्या मेरा जन्म संसार-सागर में गोते लगाते रहने के लिए हुआ है। दुर्लभ नर-तन की प्राप्ति और उसकी इस दुर्दशा का जिम्मेदार आखिर कौन है? बचपन, फिर जवानी और वह भी धीरे-धीरे खत्म हो जाएगी। अब भी समय है कि कुछ आत्म कल्याण कर लूं। कर्म का पिटारा साथ में लाया था, उसे भोग कर फिर नए कर्म लेकर जाने में भला क्या लाभ?

चिन्तन करते-करते कुछ समय और बीत गया। संसार की दशा और शरीर के प्रति उदासीनता का भाव लालमन दास को बेचैन किए रहता। धन के प्रति लालसा तो लगभग समाप्त सी हो चली थी, फिर भी शरीर की स्थिति के लिए स्वयं भोजन बनाते। स्वयं खाते और बिटिया सरूपी को खिलाते। अतिथि के आने पर, ससम्मान उसे भी भोजन कराने में प्रमाद न करते। ऐसे ही धर्म-कर्म के साथ गृहस्थ धर्म का निर्वाह करते

हुए समय व्यतीत हो रहा था।

कर्मोदय का खेल

कालचक्र अपनी गति से चल रहा था। लालमन दास के जीवन में एक समय ऐसा भी आया, जब उनकी आँख दु:खने लगी। लाख उपाय किए। चिकित्सा करायी, लेकिन कोई लाभ न हुआ और धीरे-धीरे आँखों की ज्योति जाती रही। आँखों से बाह्य जगत दिखना बंद हो गया, लेकिन अन्तर्ज्योति बनी रही। लालमन दास ने न तो विवेक खोया और न ही पूजन-अर्चन को छोड़ा। अब तो पूर्व-पठित शास्त्रों का चिन्तन-मनन ही हो पाता था। मन में तरह-तरह संकल्प-विकल्प उपजते। इस जन्म में अब तक तो मैंने किसी को कोई बाधा नहीं पहुँचायी है और न ही किसी को सताने का भाव ही आता है। फिर, इसे पूर्व जन्मों के कर्मों का फल ही समझना चाहिए जो आंख से दिखना बंद हो गया। बाह्य चक्षुओं से अब देखना नहीं होगा तो न सही, अन्तर्चक्षु से ज्ञान-ध्यान में लगकर आत्मकल्याण में प्रवृत्ति बनाऊँगा। वैसे भी, संसार में लोगों की प्रवृत्ति होती है कि वे पुण्य फल की इच्छा तो करते हैं, पर पुण्य-धर्मकर्म नहीं करते और पाप फल नहीं चाहते, पर पाप कर्मों से विरत नहीं होते। संसार की बड़ी विचित्र दशा है।

इस नर-पर्याय को पाने को इन्द्र तरसता है और जो पाता है वह इसे विषय भोग में गंवा देता है। जब असमर्थ हो जाता है तो संकल्प-विकल्प कर आर्तध्यान करता है। भगवान् के जन्म के समय तीर्थंकर शिशु को हजार नेत्र बनाकर देखने पर भी इन्द्र तृप्त नहीं होता और वही इन्द्र दीक्षाकल्याणक के समय पालकी उठाना चाहता है तो मनुष्य कहते हैं महानुभाव! अब आपका काम नहीं, पालकी नहीं उठा सकते। इन्द्र कहता है– मैंने गर्भ में आने से पूर्व छः माह पूर्व से 15माह तक रत्नों की वर्षा की, भगवान् का अभिषेक सुमेरु पर्वत पर किया, अब मेरा अधिकार क्यों नहीं? तब लोगों ने कहा भगवान् के समान ही संयम धारण करने में जो

समर्थ हो, वहीं पालकी उठायेगा। यह सुनकर, इन्द्र अपनी देव-पर्याय को लेकर पश्चाताप करने लगता है। ऐसी महत्त्वपूर्ण मनुष्य पर्याय को विषय-भोगों में गँवा देने को मूर्खता के सिवाय और क्या कहा जा सकता है। असाता कर्म के उदय को, समता बुद्धि से सहन करते हुए, शक्ति के अनुसार धर्म-कर्म में लालमन दास का जीवन-यापन होने लगा।

एक दिन श्री मंदिरजी में पूजन करने के बाद लालमन जाप करने बैठे। जाप करते-करते लालमनदास के हाथ की माला अचानक टूट गई और दाने बिखर गए। जप-विधि में व्यवधान समझ कर, उन्होंने ठान लिया कि जब तक माला पिरोकर पूरी माला नहीं फेर लूंगा, तब तक यहाँ से उठकर नहीं जाऊंगा।

धुन के पक्के लालमन दास एक-एक दाना टटोलते, इकट्ठा करते और माला में पिरोने का प्रयास करने लगे। मन में पंच-परमेष्ठी का स्मरण करते हुए, जैसे तैसे एक-एक दाना बड़ी कठिनाई से पिरो पाते, लेकिन मन में कोई-खिन्नता का भाव न उपजने देते। इस प्रयास में सहसा उनका माथा वेदी से जा टकराया। भयंकर पीड़ा से चीख निकल पड़ी। तिलमिला कर, जैसे ही उठे कि प्रकाश की किरण सामने दिखाई पड़ रही थी। सब कुछ स्पष्ट-दिख रहा है। यह भान होते ही, प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। भगवान् की स्तुति का प्रसाद था। मानो, जीवन धन्य हो गया हो। सच ही है, नेत्र-ज्योति के अभाव में न संसार सधता है ओर न धर्म-कर्म।

प्रातःकाल होते ही, जैसे लोग दर्शन-पूजन को मंदिरजी में आये तो आश्चर्य से कभी लालमन दास को देखते तो कभी वेदी में विराजमान वीतरागी शांत प्रतिमा को निहारते। इस चमत्कार से लोगों ने लालमन की अटूट भक्ति की सराहना की तथा आपस में कहने लगे– भक्ति में कितनी शक्ति होती है, उसका साक्षात् उदाहरण है लालमन आखिर, जिसकी जैसी भावना होती है, उसको वैसा ही फल मिलता है। न जाने, कौन से अशुभ-कर्म के उदय से आँखों की ज्योति गई थी, उसे पाप-का

उदय मानते हुए, लालमन ने भक्ति-आराधना और जप-तप को नहीं छोड़ा। अशुभ कर्म उसका कुछ न बिगाड़ सके। लालमन की ज्योति वापस आ गई। और कोई होता तो हताश और निराश मन से दिन गिनता हुआ जीवन बिताता। वीतरागता की शरण में क्या कुछ नहीं हो सकता? असम्भव भी सम्भव हो जाता है।

निवृत्ति की ओर उठे कदम

अभी लोगों में लालमन दास की आँख की ज्योति वापस आने की चर्चा चल ही रही थी कि उन्हें ज्ञात हुआ कि लालमन दास क्षुल्लक दीक्षा लेने की तैयारी कर रहे हैं। जो जहाँ था, वहीं से, लालमन को अपनी-अपनी दृष्टि और तर्क से समझाने को पहुँचने लगे। तभी विरक्त लालमन दास ने लोगों को कहा भैय्या! आंख की ज्योति जाते ही, मन में तरह-तरह के संकल्प-विकल्प उठने लगे थे। जीवन जीना कठिन हो गया था, फिर भी, जिन दर्शन-पूजन और जप-तप की क्रिया जैसे-तैसे निभ रही थी। मन में वेदना का अथाह सागर लहरा रहा था, तभी मैंने भगवान् के सामने प्रतिज्ञा की थी कि हे भगवन्! यदि मेरी आँख की ज्योति-वापस मिल जाए तो क्षुल्लक दीक्षा धारण कर, आत्म-कल्याण और धर्म प्रभावना में शेष जीवन अर्पित कर दूंगा। सो, भगवान् की भक्ति-अर्चना से मुझे अब ज्योति मिल गयी है। अब मुझे भी अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना है। मैं जानता हूँ कि आप सब लोग मेरे हितैषी और शुभचिंतक है। आपकी भावना की मैं तहेदिल से कद्र करता हूँ।

लोग फिर भी न माने। कई दलीलें सामने रखीं। आखिर में, लालमन ने कहा– देखो भैय्या! यह पद्मपुराण है। मैं इसे खोलता हूँ। यदि इसमें राग-द्वेष, विषय-अनुराग और दुनियादारी की बात होगी तो तुम्हारी बात मानकर अभी क्षुल्लक दीक्षा नहीं लूंगा, कुछ समय बाद लेने की सोचूंगा, पर यदि इसमें वीतरागता, संयम-तप की बात होगी, तो मैं तुरंत दीक्षा ले लूंगा। भोले श्रद्धालु श्रावकों को उनकी इस दलील पर चुप हो जाना पड़ा।

लालमन दास ने पद्मपुराण खोला और उसे पढ़ने लगे। कथानकों के माध्यम से जगह-जगह वीतरागता-जप-तप संयम की महिमा का व्याख्यान सुनकर आखिर, लोगों को चुप रह जाना पड़ा और लालमन दास अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए तत्पर हो गए।

मित्रों, शुभचिंतकों और समाज को सहमत कर लेने के बाद, अब उनके सामने सरूपी बिटिया के भविष्य की चिंता थी। यही एक मात्र पारीवारिक दायित्त्व शेष था और इसका समुचित समाधान किए बिना क्षुल्लक दीक्षा लेना सम्भव नहीं था। सो, अपने छोटे भाई ईशरीमल के पास पहुँचकर सारी स्थिति समझायी और बोले भैय्या! अब सरूपी तुम्हें सौंप रहा हूँ। बिटिया दु:खी न रहे। वस्त्र-भोजन का इसे दु:ख न झेलना पड़े। इसका पालन-पोषण अच्छी तरह से करना। अच्छी शिक्षा दिलाना और योग्य आयु आने पर, इसका विवाह अच्छे गुणवान् वर से कर देना।

भाई ईशरीमल को सरूपी के लालन-पालन करने में कोई एतराज न हुआ, पर भैय्या लालमन के दीक्षा सम्बंधी निर्णय से नेत्र सजल हो उठे और गला रुंध गया। तब लालमन ने समझाया-भैय्या! यह संसार है और संसार की माया क्षणभंगुर है। मोह के कारण ही, हम नाना सम्बन्धों का विस्तार करते हैं। संसार की स्थिति कभी एक सी नहीं रहती। इस संसार में कोई ऐसा क्षेत्र और प्रदेश नहीं, जहाँ जीव ने जन्म-मरण न किया हो। जन-परिजन, धन-वैभव, आदि संसार की वर्तमान पर्याय के आश्रित सम्बंध हैं। संसार की असारता का वर्णन शास्त्रों में विस्तार से पढ़ा है, सुना है और अनुभव भी किया है। अब तक मैंने-पुण्य-पाप के फल भोगे हैं। अब आत्म कल्याण करने का भाव जागा है। यदि अब भी न चेता तो कब चेतूंगा–

आया-रे-बुढ़ापा मानी, सुधि बुधि बिसरानी
श्रवण की शक्ति घटी, चाल चले अटपटी,
देह लटी भूख घटी, लोचन झरत पानी॥ 1 ॥

दाँतन की पंक्ति टूटी, हाड़न की सन्धि टूटी,
कायन की नगरी लूटी, जात नहिं पहिचानी॥ 2 ॥
बालों ने वरन फेरा, रोग ने शरीर घेरा,
पुत्रहु न आवे नेरा, औरों की कहा॥ 3 ॥
'भूधर' समुझि अब, स्वहित करोगे कहानी कब?
यह गति है है जब, तब पछतैहे प्राणी॥ 4 ॥

सो, भैय्या! अब दुबारा नेत्र-ज्योति पायी है और अभी समय भी है इसलिए आत्मकल्याण के लिए रत्नत्रय की साधना का जो संकल्प मेरे मन में जागा है। उसे पूरा करने में मुझे मत रोको। यह मैं निवेदन करता हूँ। एक मात्र अवशेष पारिवारिक दायित्त्व तुम्हें सौंप रहा हूँ और मुझे विश्वास है कि तुम इसका अच्छी तरह से निर्वाह करोगे। यह कहकर सरूपी को ईशरीमल को सौंप, मंदिर की ओर चल पड़े।

श्री मंदिर जी में भगवान् के सम्मुख ढ़ाईगज चादर और लंगोटी को छोड़कर, सभी प्रकार के आरम्भ-परिग्रह का त्याग कर दिया और संयम के अंग-पिच्छी और कमण्डलु को धारण कर लिया। उपस्थित श्रावकों को सम्बोधित करते हुए बोले–भैय्या! आज तक आरम्भ-परिग्रह में उलझे होने से, मेरे द्वारा जाने-अनजाने जो भी अपराध या अविनय किसी के भी प्रति हुए हों, उसे हृदय से क्षमा करें। मैं भी सभी के प्रति क्षमा भाव धारण करता हूँ।

यह वह समय था जब दिगम्बर जैन मुनि का विहार उत्तर भारत में नहीं हुआ था। शास्त्रों में पढ़कर ही दिगम्बर-मुनि की चर्या पर चर्चा होती थी और लोग इस स्थिति को कालदोष का प्रभाव मानते थे। अतः व्रती-साधक मंदिर जी में प्रतिमा के सम्मुख व्रत ग्रहण कर आत्मकल्याण में प्रवृत्ति बनाते थे। जगह-तगह भट्टारकों की गद्दियाँ थीं और जब तब भट्टारक आते-जाते रहते थे।

अग्रज भाई लालमन दास के द्वारा क्षुल्लक-दीक्षा लेने से ईशरीमल भ्रातृ-मोह के कारण दुःखी तो हुए, पर और कोई उपाय न देखकर पहिले की तरह गृहस्थी के कार्यों में जुट गए। ईशरीमल को पहिले ही, दो पुत्रियाँ थी– सेवती एवं रमपी और एक पुत्र मित्रसेन था। सरूपी के आ जाने से तीन पुत्रियों और एक पुत्र का लालन-पालन और शिक्षा का उचित-प्रबंध ईशरीमल ने किया।

समय पर, सरूपी ने जवानी की दहलीज पर कदम रखा तो उसके विवाह की चिंता ईशरीमल को घेरने लगी। बड़े भाई को दिए वचन और उनकी इच्छानुसार शीघ्र ही, उन्हें फूलचन्द्र जैसा उचित वर मिला गया। सरूपी का फूलचन्द्र के साथ विवाह कर एक कर्तव्य पूरा होने से ईशरीमल को संतोष का अनुभव हुआ। फूलचन्द्र भी सरूपी जैसी सुशीला धर्मनिष्ठ पत्नी को पाकर फूले न समाए।

कालान्तर में, सरूपी ने दो पुत्रों को जन्म दिया, जिनका नाम महावीर और जयंती रखा गया। पुण्योदय से दोनों ही पुत्र विनम्र, आज्ञाकारी और धर्म पर रुचि रखने वाले निकले। पुण्योदय से उनका चरित्र और व्यवहार इतना उज्ज्वल था कि एक बार जो भी उनसे मुलाकात करता, उन्हे कभी भूल न पाता।

समय आने पर, महावीर का विवाह हुआ और उन्हें तीन पुत्र हुए जिनका नाम प्रेमचन्द्र, भागचन्द्र और प्रद्युम्नकुमार रखा गया। इसी प्रकार जयंती के विवाहोपरांत हेमचन्द्र, जयचन्द्र, जीवनलाल, नरेन्द्रकुमार और प्रभास पांच पुत्र हुए। सभी पुत्र अपने दादा-दादी के संस्कारों के अनुरूप धार्मिक-क्रिया-कलापों में बढ़ चढकर भाग लेते थे। दुःख यही था कि पिता जयंती प्रसाद का असमय में निधन हो गया था, जिससे सभी भाईयों को एक तरह का खालीपन का अहसास होता रहता था, परन्तु संसार की कुछ रीति ही ऐसी है कि समय गहरे से गहरे घाव को भी भर देता है।

फूलचन्द्र के बड़े पुत्र महावीर कागज का व्यवसाय करने लगे थे। कागज-व्यवसाय के क्षेत्र में शीघ्र ही उनकी ईमानदारी की साख जम गई। सफल व्यवसायी होने पर भी, संतोष को ही वे श्रेष्ठ धन मानते थे और अवसर आने पर, धार्मिक कार्यों में उदारता से सहयोग कर स्वयं को धन्य समझते थे।

सरूपी के विवाह के कुछ समय बाद, सेवती और रमपी का विवाह भी ईशरीमल ने कर दिया। बड़ी पुत्री सेवती मेरठ ब्याही गई, तो रमपी ककरौली में। ककरौली समृद्ध गाँव था, और रायसिंह वहाँ के प्रतिष्ठित सद्गृहस्थ व्यक्ति थे। रायसिंह के पुत्र हरद्वारी लाल के साथ रमपी का ब्याह कर ईशरीमल अब तीनों कन्याओं के दायित्व से मुक्त हो चुके थे।

सुगढ़, सुशीला और धर्मनिष्ठ रमपी को जीवनसाथी के रूप में पाकर हरद्वारी लाल बहुत प्रसन्न हुए और जीवन सुखपूर्वक बिताने लगे। गृहस्थ धर्म का निर्वाह करते हुए रमपी ने क्रमशः तीन पुत्रों–सुमतप्रसाद, जम्बूप्रसाद और धनप्रकाश और दो कन्याओं को जन्म दिया। तीनों पुत्र सफल व्यवसायी, विनयी और आज्ञाकारी निकले।

मित्रसेन का विवाह भी यथा समय हुआ, पर जीवन भर निःसंतान ही रहे और यह दुःख उन्हें और पिता ईशरीमल को सालता रहा। इतना ही नहीं, रमपी को भी असमय में वैधव्य का दुःख आन पड़ा, परन्तु उसने अपने इस दुःख को जिनमार्ग में लगाकर, विधवा होने के दुःख को भुला दिया और आत्म-कल्याण में लग गई।

धीरे-धीरे मित्रसेन ने निःसंतान होने की स्थिति को पूर्व जन्मों का फल मानकर, उसे अब सहजता से स्वीकार कर लिया था। अपने पुत्र के निःसंतान होने से दुःखी ईशरीमल अपने बड़े भाई लालमन द्वारा सम्बोधित हुए। लालमन ने कहा–भैया! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों को करते समय, यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि संसार के

सुखों की इच्छा मन में है तो अपने-आपको अजर-अमर मानकर ज्ञान और धन को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करना चाहिए और मृत्यु सिर पर सवार है ऐसा मानकर, धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ सिद्ध करना चाहिए। यद्यपि पुरुषार्थ की सफलता-असफलता भी पूर्वजन्म के फल पर निर्भर करती है, फिर भी मनुष्य के हाथ में पुरुषार्थ ही तो शेष रहता है। पुरुषार्थ करने पर भी, यदि फल की प्राप्ति न हो तो पूर्व कर्मोदय को कारण मानकर जो है, उसी में संतोष धारण करना चाहिए। इष्ट की प्राप्ति न होने पर, आर्तध्यान में समय को बर्बाद करने में कोई बुद्धिमानी नहीं है। कर्मों का खेल बड़ा विचित्र है। इसे समता-बुद्धि से भोगने में ही भलाई है। खोटे परिणामों से तो दुर्गति मिलेगी और वर्तमान में भी जीवन जीना-मुश्किल हो जाएगा। भाई के वचनों को सुनकर ईशरीमल के चित्त की बेचैनी दूर हुई। ईशरीमल को सान्त्वना भी मिली। अशांत मन और माया-ममता का जो ताना-बाबा स्वयं बुन रखा था, वह ऐसा छूटा जैसे सांप केंचुली को छोड़ता है। भाई-लालमन (जो अब बाबा के नाम से जाने जाते थे) के वचनों से ऐसा विवेक जागा कि अब ईशरीमल ने पूरी तरह धर्म-कर्म के प्रति स्वयं को समर्पित कर दिया।

सजग चर्या

बाबा लालमन अपनी चर्या और ज्ञान-ध्यान के प्रति पूरी तरह सावधान थे। वैसे भी प्रमादी होना उनका स्वभाव न था। फिर भी, अब पद के अनुरूप चर्या करना और विहार कर लोगों को सुमार्ग पर लगाना उनका एक मात्र ध्येय बन चुका था। जहाँ भी जाते, लोगों को धर्म का उपदेश देते और उनके दु:ख-दर्द दूर करने का उपाय सुझाते। उनका अपनत्त्व भरा सम्बोधन और आत्मीयता से लबालब स्नेह लोगों को सहज ही आकर्षित कर लेता था। शीघ्र ही, पूरे जनपद और आस-पास के इलाकों में बाबा के नाम की धूम मच गई। लोग उनके दर्शन के लिए पलक-पांवड़े बिछाकर, उनकी उत्सुकता से प्रतीक्षा करते नजर आने लगे।

कुरीतियों पर प्रहार : संस्कारों का शंखनाद

विहार करते समय, जहाँ भी उनका पड़ाव होता तो उन्हें सुनने और मार्गदर्शन पाने को लोगों की भीड़ उमड़ पड़ती। सुख-शांति प्राप्ति की आशा में जुटे लोगों को सम्बोधित करते हुए बाबा कहते–भैय्या यह नर-जन्म पाना बड़ा कठिन है, उससे भी कठिन है जैन कुल का मिलना और उससे भी कठिन है वीतराग जिनधर्म का मिलना। सच्चा धर्म वही है, जो दु:खों से छुड़ाकर उत्तम सुख की अवस्था में पहुंचा दे। मोह-दु:ख का कारण है, तो वीतरागता सुख का कारण है। गृहस्थ अवस्था में जो जितना अधिक मोही होता है, वह उतना ही दु:खी होता है। इसलिए जैसे भी बने इस मोह को कम करना चाहिए। मोह का कारण बाह्य पदार्थ तो हैं ही, साथ ही हमारी दृष्टि भी साफ न होने के कारण हमें अपने अनुसार संसार को चलाने की आदत सी पड़ चुकी है। हम यह सोचते है कि संसार की गति हमारी सोच के अनुसार चले। सो भैय्या! तीर्थंकर, चक्रवर्ती भी संसार को अपने अनुसार नहीं चला सके। हाँ, उन्होंने संसार की वास्तविक स्थिति को पहिचाना और स्वयं का सुधार कर, परम सुख की अवस्था को प्राप्त हो गए।

गृहस्थ जीवन में समरम्भ, समारम्भ और आरम्भ का निरंतर क्रम चलता रहता है। पंच इन्द्रियों के विषयों को इकट्ठा करने और उन्हें भोगने की इच्छा में ही सारा जीवन यों ही व्यर्थ चला जाता है। खाने-पीने में विवेक भी नहीं रहता। भक्ष्य-अभक्ष्य का भी हमें बोध नहीं, फिर भला, हम सुखी कैसे हो सकते हैं? शुद्ध भोजन से मन शुद्ध होता है और मन की शुद्धि होने पर, अच्छे विचार आते हैं। अच्छे विचारों से इन्द्रियों पर काबू पाया जा सकता है। जैसा खाओ अन्न वैसा बने मन की कहावत तो सुनी ही है हम सबने। फिर, उसका अमल क्यों नही करते? रात्रि-भोजन करने में आप सभी रुचि रखते हैं, जबकि मनुस्मृति जैसे हिन्दूग्रन्थ में भी रात्रि भोजन न करना, पानी छानकर पीना जरूरी बताया गया है। जैन

परम्परा में श्रावक को आठ मूलगुण का पालन करना जरूरी बताया गया है–(1) मद्यपान त्याग (2) मदिरा का त्याग (3) मधु का त्याग (4) रात्रिभोजन त्याग (5) उदुम्बरफल भक्षण का त्याग (6) अनछने पानी का त्याग (7) नित्यदेव दर्शन और जीवदया पालन।

रात्रि-भोजन में अनेक दोष हैं। रात में सूक्ष्म जीव हमें दिखायी नहीं पड़ते और न जाने, कितने सूक्ष्म-जीव हमारे रात्रि भोजन के साथ भीतर जाते होंगे। वैद्यक के अनुसार भी सूर्यास्त से पहले भोजन करने को हितकारी कहा गया है। जो रात को भोजन करते हैं, उन्हें अजीर्ण आदि अनेक रोगों का सामना करना पड़ता है। वही लोग हैं जो आदि रोग से पीड़ित होते हैं, जो रात्रिभोजी होते हैं। हैजा से मरनेवाले ज्यादातर लोग रात्रि भोजन करने वाले होते हैं और इसलिए रात्रि-भोजन का त्याग सभी को कर देना चाहिए। इसी प्रकार जमींकन्द, गोभी, आलू, रायता आदि में अनेक त्रस और निगोदिया जीवों का स्थान पाया जाता है। केवल स्वाद के लिए इनका सेवन कर, बेमतलब हिंसा के दोषी बनने से भला क्या लाभ? जरा सोचें! प्रमाद के कारण अनछने पानी का प्रयोग करने में भी हमें कोई संकोच नहीं होता जबकि अनछने जल की एक बूंद में जितने जीव पाये जाते हैं यदि वे कबूतर के आकार में उड़ें तो उनके द्वारा यह जम्बूद्वीप लबालब भर जाय। अनछने जल के साथ अनेक जीव पेट में जाकर मर जाते हैं, परन्तु अनेक जीवित रहकर बड़े होकर नेहरुआ जैसे भयंकर रोगों को उत्पन्न करने में कारण बनते हैं। इसलिए जीवदया और स्वास्थ्य की दृष्टि से छना जल ही पीना चाहिए। यह सोचकर, इनका त्याग कर देने से भोजन के प्रति जो अत्यधिक राग है वह छूटेगा और धीरे-धीरे वीतराग मार्ग पर चलने की प्रेरणा भी मिलेगी। हमें ध्यान रखना होगा कि प्रमाद हिंसा का मूल कारण तो है ही, साथ ही, लौकिक दृष्टि से भी हानिकारक और अवनति का कारण है। प्रमादी जीवन स्वयं के लिए कष्टकारी है और औरों के लिए भी कष्ट देने वाला है। प्रमाद के

कारण ही प्रतिनारायण रावण जैसे बुद्धिमान् राजा का विवेक सो गया और सीता हरण कर लोकनिन्दा का पात्र बना। राम-रावण युद्ध हुआ। आज तक रावण वध का दृश्य देखने लोगों की भीड़ उमड़ पड़ती है। बुराई पर अच्छाई की जीत मानकर प्रसन्न होते हैं। हालांकि मृतात्मा को मूर्तिमान् बनाकर, उसे जलाकर द्वेष बुद्धि से आनंद मनाने में निरर्थक हिंसा-पाप कर्म का उपार्जन भी करते हैं। अत: प्रमाद को छोड़ना ही धर्म का प्रारम्भ है।

इसी तरह अपनी स्वार्थ-सिद्धि या स्वर्ग पाने की लालसा में पशुओं की बलि देना बेमानी है। भला, निरीह और भोले पशुओं की बलि देने से कैसे तो आपके कार्य सिद्धि होगें और कैसे आपको स्वर्ग मिल जाएगा? थोड़ा तो विचार करें! शास्त्रों में कहा है कि किसी भी कार्य की सिद्धि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव के साथ-साथ काललब्धि और उचित पुरुषार्थ पर निर्भर है। यज्ञ और धर्म के नाम पर पशुओं की बलि देना भी उचित नहीं कहा जा सकता और न ही उसे अहिंसा कह सकते हैं। धर्म के लिए तो ऐसे यज्ञ की जरूरत ही नहीं है। आवश्यकता है तो ऐसे यज्ञ की, जिसमें जीवात्मा अग्निकुण्ड हो, तपस्या अग्नि हो और मन-वचन-काय की निश्छल प्रवृत्ति कुड़छी हो, जिसमें सभी पाप कर्म धू-धू कर भस्म हो जावें।

भैया! जरा ध्यान देना! गंगा-स्नान करने से हमारे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं, ऐसी मान्यता लोगों की है। क्या मन को पवित्र बनाए बिना पाप-कर्मो से छुटकारा मिल सकता है? यदि ऐसा होता हो, तो सबसे पहले उन जलचर जीवों को मुक्ति मिलेगी जो उसी में रहते हैं और वहीं अपना जीवन समाप्त कर लेते हैं। हकीकत में तो स्थिति कुछ और ही है। जिस गंगा में स्नान करने से मुक्ति मिल सकती है, वह गंगा तो महावीर की अहिंसा, अनेकान्तमयी वाणी है जिसे गौतम गणधर ने ग्रहण किया और परम्परा से आचार्यो द्वारा हमें मिली है, ऐसी परम-पवित्र जिनवाणी

रूपी गंगा में यदि हमने गोते लगाए, तो निश्चित है कि हमारा मिथ्यात्व, राग-द्वेष नष्ट हो जाएगा और एक न एक दिन हमें भी परम सुख की प्राप्ति हो जाएगी। हमारे मोह-माया रूपी अंधकार को दूरकर सन्मार्ग में लगाने वाली जिनवाणी-माता ही यथार्थ में गंगा मैय्या है। इसमें जितना चाहो उतना नहाओ। कोई मना नहीं करता। बबूल का बीज बोकर आम के फल की इच्छा करना जिस तरह बेमानी है उसी तरह अंध श्रद्धा में गंगा-स्नान से मुक्ति मिल जाएगी, यह सोचना भी बेमानी है। धर्म के नाम से हिंसा करने वालों को तो तीन काल में मुक्ति नहीं मिल सकती, इतना निश्चित समझ लेना।

मुक्ति मार्ग में चलने के लिए जरूरी है कि हम भावनाभायें कि-

(1) मैं अपने शुभ-अशुभ कर्मों और उसके फलों का स्वयं भोक्ता हूँ। अत: दु:खों के आने पर किसी देवी-देवता की उपासना नही करूंगा। मात्र वीतरागी जिनेन्द्र की ही शरण गहूँगा।

(2) स्वप्न में भी मेरे मांसभक्षण के भाव न हों।

(3) स्वप्न में भी मेरे मदिरापान के भाव न हों।

(4) रोगादि होने पर भी मधु सेवन का भाव न आवे।

(5) त्रस-जीवों से सहित पदार्थों का सेवन का भाव न जागे।

(6) स्वप्न में भी किसी प्राणी को मारने का भाव न जागे। हमेशा प्राणि रक्षा का भाव बना रहे।

जिस प्रकार मिथ्यात्व और पाप कर्मो से बचने के लिए ऐसी (ऊपर कही गई) भावना जरूरी है उसी प्रकार आत्मकल्याण के लिए भावना भानी चाहिए कि-

(1) संसार के समस्त प्राणियों के प्रति मैत्री-भाव बना रहे।

(2) गुणी-जनों को देखकर प्रसन्नता हो, ईर्ष्यालु न बनूं।

(3) दु:खी जीवों पर मेरी करुणा बनी रहे।

(4) शत्रुओं पर भी मुझे क्षोभ न आवे, उनके प्रति उदासीनता रहे।

(5) व्यसनों पर ध्यान न जावे। कुल मिलाकर हमें ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिसे हम स्वयं के लिए कष्टदायी समझते हैं।

गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी, बाबा लालमन दास बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के दुष्परिणामों से खिन्न रहते थे और अब जगह-जगह विहार करते-करते इस सामाजिक बुराई का जो घिनौना रूप प्रत्यक्ष देखा, तो इस बुराई को दूर करने का बीड़ा उन्होंने उठा लिया। जहाँ भी जाते अपने प्रवचन में इसका जिक्र करते हुए लोगों को चेतावनी देते-देखो! आप लोग बाल ब्याह कर एक मासूम के साथ खिलवाड़ करते हैं। जिसे ब्याह का मतलब ही मालूम न हो, उसे ब्याह जैसे बंधन में बांधकर घोर अन्याय करते हैं। विषय-वासना की आँधी और झंझावातों में अबोध कन्या को अकेले पीड़ा सहने के लिए छोड़कर, अपने कर्तव्य की पूर्ति समझ लेते हैं, यह घोर अन्याय और पाप है। वासना में अंधा व्यक्ति न तो उसकी भावना को समझता है और न ही उसकी उसे कोई चिंता होती है। ऐसे ब्याह से अशान्ति के सिवाय कुछ भी हासिल नहीं होता। दुर्भाग्य से, वह बीमार या मृत्यु को भी प्राप्त होते देखी जाती है। विवाह तो, गृहस्थ जीवन का आधार है, उसकी पवित्रता बनाये रखने के लिए योग्य उमर हो जाने पर ही असभय कन्या या पुत्र का विवाह करना चाहिए। इसी प्रकार बृद्ध-विवाह के अनेक दोष समाज में पनप रहे हैं। अपनी आयु से कई गुना छोटी कन्या के साथ विवाह करने के बाद, खुद पुरुष तो अपनी आयु पूरी कर चला जाता है और असमय में वैधव्य के दु:खों को झेलने के लिए अपनी ब्याहता पत्नी को छोड़ जाता है। विधवा के प्रति परिवार और समाज के लोग कैसा व्यवहार करते हैं। यह शब्दों में कहा जाने योग्य नहीं है। अत: भैय्या! यदि पाप कर्म के उदय से जीवन-संगिनी का असमय में वियोग हो जाय, तो धर्म-कर्म में शेष जीवन को लगाकर, आत्म-कल्याण

में लग जाने में ही जीवन की भलाई है। विषय-वासना के चक्कर में अपना और दूसरे जीवन को गर्त में ढ़केलना साक्षात् हिंसा-पाप का कारण है।

इसी तरह शादी-ब्याह के प्रसंगों में आप लोग जो ज्योनार देते है, उसमें भोजन की पवित्रता का ध्यान नहीं रखते। भक्ष्य-अभक्ष्य पदार्थो का सेवन करते हैं। रात्रि में ब्याह कर आतिशबाजी आदि में फिजूलखर्ची करते हैं। यदि ब्याह के मौके पर भी खान-पान की शुद्धता पर आप लोग ध्यान नहीं रखेंगें तो भला, गृहस्थ जीवन पवित्र कैसे होगा? परिवार में सुख-शांति कैसे आएगी? रात्रि में विवाह का आयोजन करने में अनेक पाप की प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिलता है। आखिर, संसार में जितने भी गलत काम होते हैं, उसे रात में ही तो किए जाते हैं। राक्षस-प्रवृत्ति वाले लोगों के कार्य ही रात में शोभा को प्राप्त होते हैं। अरे भैय्या! हमें जैन कुल मिला है, कुछ तो अपनी परम्परा का ख्याल रखकर, कार्य करो। जीवन को सफल बनाने के लिए शुरू से ही प्रयत्न करना पड़ता है। समय रहते इन बाल-वृद्ध विवाहों और रात्रि-विवाह को बंद कर दो, इसी से समाज में सुख-शान्ति और समृद्धि के बीज पनपेंगें।

आखिर, जीवन-कल्याणमय कैसे बने? अंधविश्वासों से समाज को कैसे छुड़ाया जाए और उन्हें धर्म-कर्म में कैसे प्रवृत्त किया जाए। यही प्रयास बाबा का रहता। लोगों में बाबा द्वारा कही गयी बात का असर भी होता और लोग सोचते भी कि बाबा कहते तो ठीक है, पर अमल करने में अभी झिझक बरकरार थी। सो, बाबा जब-तब समाज के मुखिया लोगों को भी बुलाकर समझाने का प्रयत्न करने लगे थे।

एक दिन बाबा ने मेरठ की पंचायत बुलवाई और उस पंचायत को सम्बोधित करते हुए कहा—भैय्या! देखो, हम सभी ने यह दुर्लभ मनुष्य जन्म पाया है और इसे यों ही गंवा रहे हैं। हमारा सारा जीवन खाने के लिए भाग-दौड़ और स्वाद के लिए, जो भी मिल जाए उसे खाने में ही बीत

रहा है। संसार में भक्ष्य और भी कई पदार्थ है। फिर, भला जमींकन्द, गोभी में ही ऐसी क्या बात है, जिसे छोड़ने में सभी लोगों ने बेमतलब झिझक पाल रखी है। इस झिझक को तोड़कर, समाज की ज्योनारों में जमींकन्द और गोभी के प्रयोग पर पाबंदी कायम कर देनी चाहिए। इससे व्यक्ति, परिवार, समाज और धार्मिक परम्परा का बहुत बड़ा उपकार होगा।

यद्यपि पंचायत के अधिकांश लोग बाबा जी का आदर करते थे। उनके प्रति उनकी अटूट श्रद्धा भी थी, परन्तु यह प्रसंग विवाद का कारण बन गया। समाज दो धड़ों में बंट गई। इससे बाबा के मन को आघात लगा और मेरठ छोड़ देने का उन्होंने विचार कर लिया। यद्यपि अगले दिन हस्तिनापुर की ओर विहार करने का विचार था, परन्तु इस प्रसंग के बाद जब हस्तिनापुर विहार के निश्चय की खबर लोगों को मिली तो, खलबली सी मच गई। लोग सोचने लगे कि बाबा की धर्म के अनुकूल बातों पर विवाद कर हम लोगों ने ठीक नहीं किया। कुछ लोग बाबा से क्षमा मांगने और मेरठ छोड़कर न जाने की प्रार्थना भी करने लगे, पर बाबा तो धुन के पक्के थे। जो एक बार सोच लिया, उसे पूरा करके ही दम लेते थे। सो, अब हस्तानागपुर की ओर विहार करने के निर्णय से पीछे हटने का प्रश्न ही कहाँ था?

रात्रि हो गयी थी। दिन का गरम वातावरण शांत हो चुका था, पर बाबा विचारों में खोये हुए सोच रहे थे कि लोगों को स्वहित की बात भी नहीं सुहाती। ठीक ही कहा जाता है कि सोते को तो जगाया जा सकता है, पर जागते हुए सोने का अभिनय करने वाले को नहीं जगाया जा सकता। आहार के प्रति जितना राग पाया जाता है, उतना यदि जिनभक्ति में हो जाय, तो जीवन स्वर्ग बन जाय। जिसकी जैसी सोच होती है वैसी ही उसकी गति बनती है, इसमें निमित्त तो कोई भी बन सकता है, अन्ततः आचरण तो मति के अनुसार ही होगा। जब तक विवेक-बुद्धि नहीं होती, तब तक राग का भाव भी नहीं जाता। आदि-आदि विचारों की

श्रृंखला चलती रही।

विहार से किया उद्धार

बाबा का जीवन अब स्व-पर हित में ही बीतता था। आहार के प्रति कोई विशेष राग न था, मात्र शरीर की स्थिति के लिए मीठे दूध के साथ सीधा-सरल आहार ग्रहण करते। उनकी इच्छा होती कि यह आहार भी छूट जाए तो ठीक हो, पर धर्म-साधन में भी शरीर माध्यम है और औदारिक शरीर के कारण उसकी पूर्ति तो करनी ही पड़ती है, यही विचार कर बाबा ने स्वल्प आहार नियत कर, शेष का त्याग कर दिया था।

धर्म-तीर्थ का शुभराग धर्म-साधन को पुष्ट करता है। इसी भावना के कारण हस्तिनापुर की वंदना करने की भावना बहुत समय से हो रही थी। अब अवसर आया है। सो, हस्तिनापुर की ओर विहार के निश्चय से मन में हर्ष की लहर दौड़ रही थी। वे सोचने लगे कि यही वह हस्तिनागपुर का क्षेत्र है–जहाँ शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ भगवान् के गर्भ-जन्म-तप कल्याणक हुए थे। देवों के अतिशय से समृद्ध यह भूमि आज भी अतिशयकारी है। यहीं तो भगवान् आदिनाथ को राजा श्रेयांस और सोमप्रभ ने सर्वप्रथम इक्षुरस का आहार दिया था। जिस दिन यह आहार हुआ था। वह वैशाख शुक्ला-तृतीया का दिन था। यह तिथि अक्षय हो गई और अब तो पूरा भारत अक्षय तृतीया के रूप में इसे मनाता है। शास्त्रों में ठीक ही कहा है कि सत्पात्रों को दिया गया दान इसी तरह फलता-फूलता है। ऐसे तीर्थ के दर्शन से निश्चित ही, मेरा कल्याण होगा। शुभ-संकल्प-विकल्पों में रात्रि कब बीत गई, इसका भान ही न हुआ।

मौसम ने बदली करवट

प्रातःकाल होने पर, हस्तिनागपुर की ओर विहार करने को बाबा जैसे ही उद्यत हुए, कि भक्तों की टोली साथ हो ली। विहार कर मवाना, होते हुए गणेशपुर गाँव के निकट पहुँचने वाले ही थे कि अचानक एक कुएँ

की जगत की ओर इशारा करते हुए बाबा ने कहा भैय्या! जिसे गणेशपुर जाना हो, वह जाय। हम तो, आज यहाँ ही विश्राम करेंगें। यह सुनते ही, भक्त लोग जो सोच ही रहे थे कि गाँव आते ही, विश्राम करेंगें। उनके तो होश उड़ गए। बाबा से सहमे-सहमे से बोले—बाबा! यहाँ तो सर्दी है, कोई आड़ भी नहीं, खुले आसमान के नीचे ठण्ड की बाधा हो सकती है। सब बीमार पड़ जायेंगें। बाबा का उत्तर मिला-देखो! जिसे जाना है, वह जाय मैं किसी को रोक नहीं रहा, पर जिस ठण्ड के डर से तुम घबड़ा रहे हो, ऐसी कोई बात नहीं होगी। आधी रात के बाद देखना यहाँ इतनी गर्मी हो जायगी कि पसीना छूटने लगेगा। आखिर, बाबा की बात मान वे सभी वहीं ठहर गए। आधी रात के बाद लोगों ने अनुभव किया कि जो बाबा ने कहा था, वैसा ही हुआ। भक्त आपस में चर्चा करने लगे कि इनको कैसे आभास हो गया कि मौसम में इतना बड़ा परिवर्तन आ जायगा। उसमें से एक बुजुर्ग भक्त बोले—यह सब श्रद्धा-भक्ति और निःस्वार्थ सेवा का फल है। बाबा के वचन मिथ्या नहीं होते। उन्हें वचन-सिद्धि हो गई है। यह सुन लोगों ने सहमति में सिर हिलाया और चुप हो गए।

अगले दिन हस्तिनागपुर पहुँचे और कुछ दिन अर्चा में बिताये। भगवान् के दर्शन कर स्वयं को धन्य माना। साथ आए भक्तो ने इस वंदना को जीवन की अमूल्य-निधि माना उनके मन में बाबा के प्रति श्रद्धा का भाव और भी बढ़ गया। कुछ भक्तगण मेरठ लौट गए और कुछ ने बाबा के साथ कुछ दिन और रहने का मन बनाया।

जिनमन्दिर निर्माण की प्रेरणा

हस्तिनागपुर प्रवास के बाद, विहार कर सराय लुहारा गाँव आए। गाँव के श्रद्धालु श्रावकों ने उनका भाव-भीना स्वागत किया। जब बाबा को यह बात मालुम पड़ी कि यहाँ कोई-जैन मंदिर नहीं है, तो उन्हें आश्चर्य हुआ। लोग बाबा को सुनने को उतावले हो रहे थे, इसलिए भी कि वचन सिद्धि की उनकी प्रसिद्धि उनके कानों तक पहुँच चुकी थी। सभी के मन में था

कि शायद यहाँ भी बाबा के वचनों की सिद्धि का कोई अवसर मिल जाय। बाबा ने कहना प्रारम्भ किया-भैय्या! बिना देवदर्शन के आप लोग कैसे जी रहे हैं? देवदर्शन के लिए मंदिर का होना जरूरी है। मन्दिर तो हर-हाल में बनना ही चाहिए। मन्दिर के बिना आप अपने बच्चों को क्या संस्कार दे पायेंगे। कैसे आपका और उनका कल्याण होगा। जिनदर्शन-पूजन के बिना आप कैसे जैनी हैं?

बाबा की प्रेरणा से लोगों ने निश्चय किया कि अब तो मन्दिर बनकर रहेगा। शीघ्र ही, मन्दिर बन गया। लोगों में खुशी की लहर दौड़ गयी। बाबा को जब यह खबर मिली तो आँखें खुशी से चमक उठीं। उन्होंने वहाँ के श्रावकों को धर्म वृद्धि का परोक्ष आशीर्वाद दिया।

विहार करते-करते एक बार उनका आगमन जौले गाँव में हुआ, वहाँ भी जिनमन्दिर नहीं था पर जैनों के काफी घर थे। बाबा ने सभी को समझाया भैय्या। जिन-दर्शन और पूजन खुशहाली का सबब है। बिना इसके शायद धन-दौलत तो इकट्ठी कर लो, पर सुख-शान्ति न मिल सकेगी। क्या जीवन-भोगों के लिए ही है? भला, संसार के भोगों से किसे संतुष्टि मिली है। वीतराग प्रभु के दर्शन से जो सुख-शान्ति मिलती है, उसे अकूत धन-दौलत से भी नहीं खरीदा जा सकता। हकीकत तो यह है कि अंत समय में वीतराग जिनेन्द्र ही शरण होंगें। उनकी भक्ति ही, एक न एक दिन हमारी नैया पार लगायेगी। अतः जैसे भी हो, मन्दिर बनवाओ और अतिशय पुण्य कमा लो।

चूंकि बाबा की वचन-सिद्धि के प्रभाव से सभी लोग प्रभावित थे। इसलिए पंचायत बुलाकर मन्दिर बनवाने का निर्णय कर लिया। लोगों ने कहा चूंकि बाबा की प्रेरणा है, अतः कोई बाधा नहीं आयगी और मन्दिर बन जायगा। इसी विश्वास के साथ लोगों ने चंदा इकट्ठा करना शुरु कर दिया। सभी ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार दिल खोलकर सहयोग भी दिया।

सेठ को मिला कुटिल भाव का दुष्परिणाम

उस गांव में ही, एक सेठ जी थे। चावल का अच्छा-खासा व्यापार था उनका। पूर्व-पुण्योदय से सभी प्रकार की सम्पन्नता थी, पर मन्दिर बनवाने के काम में, उन्हें कोई रुचि न थी। इतना ही नहीं, पूरा समाज जानता था कि सेठ जी से किसी प्रकार की आशा करना रेत से तेल निकालने जैसा है। फिर भी, उत्साही चंदा करने वालों के मन में आया कि शायद बाबा जी की बात पर उनका दिल बदल गया हो, और वे कुछ सहयोग कर दें। यह सोचकर वे सेठ जी के पास पहुँचे और मन्दिर बनवाने में सहयोग करने के लिए उनसे विनय पूर्वक अनुरोध किया। सेठ जी से उत्तर मिला-न मुझे मन्दिर से कुछ लेना है और न ही, मैं इसमें कोई सहयोग करुंगा। यह सुनते ही, कार्यकर्ताओं को ठेस तो लगी, पर यह सोचकर कि एक सेठ के न देने से क्या फर्क पड़ता है? मन्दिर तो बनेगा ही। कम से कम कोई यह तो नहीं कह सकेगा कि एक बार तो कहा होता।

एक दिन सुबह-सुबह सेठ जी गदहों पर चावल से भरी बोरियाँ लादकर मण्डी की ओर चलने को आगे बढ़े ही थे, कि रास्ते में बाबा जी को देखकर, पहले तो कन्नी काटने की कोशिश करने लगे। जब कोई उपाय न सूझा, तो सीधे उसी ओर बढ़ चले जिधर से बाबा आ रहे थे। औपचारिक विनय प्रदर्शित की तो बाबा पूछ बैठे– सेठ जी! सुबह-सुबह किधर जाना हो रहा है और गदहों में लादकर क्या ले जा रहे हैं? लाला जी के मन में आया कि आज तो बुरे फँसे, सच कहता हूँ, तो बाबा जरूर कुछ न कुछ मांग लेगें। सो, कोई उपाय न देख, सेठ जी ने कहा--बाबाजी! कुछ खास नहीं, गदहों पर नमक लादकर मण्डी जा रहा हूँ। बाबा ने चुप रहना बेहतर समझा और अपने रास्ते आगे बढ़ गए। सेठ जी ने राहत की साँस ली और जल्दी-जल्दी मण्डी की ओर कदम-दर कदम बढ़ाने लगे।

मण्डी पहुँचते ही, गदहों से बोरियाँ उतरवाई और उन्हें पलटवाया तो आश्चर्य से आँखे फटी की फटी रह गईं। बोरियों से चावल के स्थान पर

नमक का ढेर लग गया। माथा पकड़कर वहीं बैठ गए। चित्त व्याकुल हो गया। लोगों ने पूछा तो घर से चलने से लेकर बाबाजी से हुई बातचीत होने तक का पूरा ब्यौरा सुना दिया। लोगों ने कहा सेठजी! कम से कम बाबा से तो झूठ न बोला होता। भला, उन्हें तुम्हारे चावल से क्या लेना-देना था। वे गृहत्यागी साधु हैं और हमेशा स्व-पर कल्याण में लगे रहते हैं। तुमने उनसे झूठ बोलकर, अच्छा नहीं किया। उनसे झूठ बोलने का ही यह फल है कि तुम्हारा सारा बासमती चावल नमक में तब्दील हो गया। अब यहाँ माथा पकड़कर बैठने से क्या होगा? जाओ! और उस सिद्ध-पुरुष से माफी मांगो। हमें विश्वास है कि वे तुम्हें माफ कर देंगें और तुम्हारी कोई हानि नहीं होगी।

लोगों के समझाने से सेठजी के आकुलचित्त को थोड़ी राहत मिली और मण्डी से वापस लौट पड़े। राह में अनेक तरह के ख्याल आते रहे। जल्दी ही, बाबा के चरणों में जाकर बोले-बाबाजी! मैं लुट गया, बरबाद हो गया। बाबा देख रहे थे कि सेठजी की जो शान सुबह थी, वह अब नहीं रहीं, लाचारगी और बेवसी से मायूस चेहरा देखकर बाबा का दिल पसीज उठा। बोले क्या हुआ सेठजी! आखिर, इतने बेबस आप कैसे हो गए? यह लाचारगी चेहरे पर क्यों उभर आई है? कुछ तो बताएँ। सेठजी ने रुआँसे होकर उत्तर दिया--बाबाजी! मुझे क्षमा कर दें। मैंने आपसे झूठ कहा था कि बोरियों में नमक है। उसमे तो बासमती चावल थे। लालच के कारण मैंने आपको झूठ कहा था। बाबा सहजभाव से बोले-भैया! तुमने जो कहा था, वही तो निकला। इसमें भला, लुटने, पिटने और बरबाद होने की बात कहाँ से आ गई। क्या गलत हुआ? सेठजी गिड़गिड़ाने लगे-- बाबा मुझे माफ कर दें।

बाबा ने सेठ की दशा देखी और बोले--सेठजी! उठो, घबड़ाओ मत। भावना से बड़े से बड़े कार्य बनते हैं और भावना से ही, बड़ी से बड़ी हानि भी होती है। मनुष्य का सोचा-विचारा और किया कर्म ही उसके

सामने आता है। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। सुबह का भूला शाम को वापस आ जाय तो उसे भूला हुआ नहीं कहा जाता। मन्दिर बनवाने में कुछ द्रव्य लगाने का संकल्प करो। जीवन-सुखी और समृद्ध होगा। भगवान् की भक्ति करने का अवसर प्रदान करने में तुम्हारे द्रव्य का सदुपयोग भी हो जायगा और तुम्हारा बिगड़ा खेल भी सुधर जायगा। नमक चावल हो जायगा और आय भी अच्छी हो जायगी।

बाबा की बात ध्यान से सुनते-सुनते ही सेठजी ने मन में संकल्प कर लिया था कि अब मैं अपने द्रव्य का सदुपयोग करुंगा। प्रकट में बोले बस आपका आशीर्वाद चाहिए जैसा आप कहेंगें वैसा मैं करूंगा। बाबा ने कहा-"भगवान् की शरण ही सच्ची शरण है, जाओ! सब ठीक होगा"।

बाबा का आशीर्वाद प्राप्त कर सेठ जी का मुरझाया चेहरा खिल उठा और जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए मण्डी में पहुँचे तो आश्चर्य से फिर हतप्रभ रह गए। सारा नमक चावल हो चुका था। इस चमत्कार को जिसने भी देखा वही बाबा के दर्शनों को लालायित हो उठा। संसार तो चमत्कार के पीछे भागता है, यह बात बाबा अच्छी तरह से जानते थे। अत: मण्डी से लौटकर जब लोगों की भीड़ उनके दर्शनों को उमड़ आयी तो बाबा बोले—भैया! सब शुभ-अशुभ कर्मों का चमत्कार है। जब किसी का शुभोदय होता है तो उसे वैसे ही निमित्त मिल जाते हैं और अशुभोदय होता है तो निमित्त भी वैसे ही इकट्ठे हो जाते हैं। आप लोग जो मेरा चमत्कार समझ रहे हैं, वह मेरा नहीं। भगवान् की भक्ति और स्तुति का चमत्कार है। आ. समन्तभद्र ने स्वयम्भूस्तोत्र रचते समय केवल इतनी ही तो भावना भायी थी कि मैं वीतराग जिनेन्द्र के प्रति ही समर्पित होऊँगा और इस भावना को साकार किया था जिनेन्द्र भगवान् के भक्त देवताओं ने। इसलिए हम सभी को भगवान् की शरण में ही रहना चाहिए। रही, मेरे कहे का कार्य रूप परिणत होने की बात तो वह जैसा मुझे आभास होता है वैसा मैं कल्याण की भावना से कह देता हूँ। उससे यदि किसी को लाभ

हो जाय तो मेरा उसमें क्या सहयोग। भला, मैं किसी का भला-बुरा चाहूँ तो भी कैसे कर सकता हूँ। सब अपनी-अपनी भावना और उनके अपने-अपने कर्मो का खेल है।

उमड़ी भीड़ जब धीरे-धीरे छट चुकी तो सेठजी आए और कृतज्ञता के साथ बाबा के चरण पकड़कर बोले– आपकी कृपा से आज मैं बच गया। भाव तेज हो जाने से आज मुझे आशा से अधिक आमदनी भी हुई। मन्दिर बनवाने में तन-मन-धन से सहयोग करूंगा। मंदिर, शीघ्र बनकर तैयार हो गया। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। सेठजी ने बाबा को दिए गए अपने वचनों का पालन किया था। इससे सेठ जी की उदारता की चर्चा भी लोगों की जुबान पर चढ़ गई।

बाबा लालमन दास पूरे इलाके में सिद्ध-पुरुष के रूप में प्रसिद्ध तो हो ही गए थे। इस ख्याति का असर यह हुआ कि उनके दर्शन और आशीष की लालसा भी लोगों के दिल में पलने लगी। इन सबसे बेखबर बाबा स्व-पर कल्याण के व्रत में ही दत्तचित्त रहते और सादगी और सदाचार जीवन-जीने की प्रेरणा देने में ही, अपने जीवन को सार्थक बनाने में लगे थे। एक बार विहार करते हुए वे बरनावा गाँव पहुंचे तो यह देखकर आश्चर्य चकित रह गए कि मन्दिर आधा-अधूरा बनकर खड़ा है। मन्दिर की इस स्थिति से उनको बहुत कष्ट हुआ। मालुम करने पर, उन्हें जानकारी मिली कि मन्दिर के ठीक बगल में किसी जैनी भाई की कोठरी है। यदि वह मन्दिर को मिल जाय तो मन्दिर व्यवस्थित हो जाय। इस बारे में वहाँ के लोगों ने काफी कोशिश भी की थी, परन्तु वह कोठरी नहीं मिल सकी थी। जानकारी मिलते ही, बाबा ने उस जैनी भाई को बुलवाकर समझाया कि भैय्या! मन्दिर जी को यदि वह कोठरी दे देंगें तो पुण्य भी होगा और यश भी फैलेगा। बाबा की बात सुनकर कोठरी का मालिक चुपचाप चला गया। न उसने हाँ की और न ही न।

उस जैनी भाई के दो जवान पुत्र थे और दोनों का अभी तक ब्याह

नहीं हुआ था। उन दोनो पुत्रों को बुलाकर बाबा ने समझाया यदि तुमने मन्दिर जी को वह कोठरी दे दी तो तुम दोनों का ब्याह भी शीघ्र हो जायगा और गाँव में तुम्हारी और तुम्हारे पिता की इज्जत भी बढ़ जायगी। दोनों पुत्र ने बाबा की बात ध्यान से सुनी और आपस में मशविरा करके पिता को कहा–पिताजी! वैसे भी उस कोठरी का हम लोग कोई उपयोग नहीं कर रहे और जब बाबा कह रहे हैं तो हमें वह कोठरी मन्दिर को दे ही देनी चाहिए। पुत्रों की मंशा और बाबा की बात सोचकर पिता ने अंत में, मंदिरजी को वह कोठरी दे दी।

कुछ ही दिन बीते होंगें कि दोनों पुत्रों का धूम-धाम से विवाह हो गया। बाबा के वचनों के प्रभाव की और ख्याति बढ़ गई। मन्दिर भी यथा समय बनकर तैयार हो गया।

चमत्कार और प्रभाव की ख्याति की चर्चा उनके कानों तक भी पहुँचती, पर इन सब से उदासीन बाबा का ध्यान केवल भगवान् महावीर की अहिंसामयी वाणी को जन-जन तक पहुँचाने में लगा रहता। उनके ख्याल में आता कि यह सब धर्म की महिमा है। धर्म के प्रभाव से यदि कोई चमत्कार जैसी बात होती है और लोग उस चमत्कार का कारण मुझे मानकर महत्त्व देते हैं, तो यह सब उनकी नासमझी और श्रद्धा के कारण ही है। भला, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अनुकूलता के बिना किसी कार्य की सिद्धि कैसे हो सकती है? निमित्त कोई भी हो, लेकिन मूल में तो जब तक द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव और भव की अनुकूलता न हो तो निमित्त भी कुछ नहीं कर पाता। यह भी हो सकता है कि निमित्त की प्रधानता से द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अनुकूलता बन जाय और कार्य की सिद्धि हो जाय। मुझे तो जैसा महसूस होता है और जिससे धर्म-कर्म की प्रभावना होती है, लोगों को सुख-शान्ति मिलती है, वहीं बात मैं कहता हूँ। लोग फिर भी, इसे मेरा या मेरे वचनों का चमत्कार माने तो सिवाय इसके कि वे भोले हैं और वस्तुस्थिति का विचार नहीं कर पाते, यदि वे जिनवाणी

का अभ्यास करेंगें तो हकीकत उनके सामने आ जायगी।

लोगों की नासमझी से जब-तब बाबा खिन्न भी हो जाते। अनेक बेमतलब किए जाने वाले कार्यों से उन्हें चोट पहुँचती। लोगों की यह आदत बन चुकी थी कि वे गन्ना प्राप्त करने के बाद खेत में आग लगा देते थे। वे नहीं जानते थे कि इससे त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा का कितना दोष उन्हें लग रहा है। जब भी लोग उनके पास आते तो अनजाने में, उनके द्वारा की जाने वाली हिंसा से बचने की प्रेरणा भी करते थे। बाबा के स्नेहपूर्ण हितकारी वचनों का उन पर पूरा असर यह हुआ कि उन्होंने खेतों में आग लगाना बंद कर दिया।

इसी प्रकार बाबा ने विहार करते हुए देखा कि लोग हुक्का-पीने-पिलाने को आन-बान और शान की बात समझते हैं। इतना ही नहीं, घर के आंगन में हुक्का रखा जाना एक जरूरी रिवाज है, तो बाबा को उनकी नासमझी पर तरस आया और लोगों को समझाया कि झूठी आन-बान और शान में वे अपना और अपने बच्चों का कितना बड़ा नुकसान कर रहे हैं। हुक्का-तम्बाकू पीने से होने वाली हानियों का लेखा-जोखा जब बाबा ने अपनी मीठी जुबान से समझाया तो लोगों को अपनी गलती का अहसास हुआ और कुछ ने तो समझकर और कुछ ने बाबा के चमत्कारी व्यक्तित्त्व के कारण हुक्का पीना छोड़ दिया।

विहार करते हुए बाबा सलावा भी गए। वहाँ लाला मित्र सेन जी का धर्मनिष्ठ परिवार था, यह परिवार बाबा के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु था और बाबा की चर्या में कोई बाधा न आने पायें, इस बात का पूरा ध्यान रखकर उनकी व्यवस्था करता। आहार-चर्या में बाबा शुद्धता का पूरा ध्यान रखते थे। चौके में दिये जाने वाले दूध को प्राप्त करने के लिए गाय को शुद्ध जल से स्नान कराकर तथा थन की शुद्धि पूर्वक ही दूध मिकाला जाता था। यह उनकी ताकीद थी कि बछड़े के लिए एक थन का दूध अवश्य छोड़ा जाय।

सलावा में रहते हुए, उन्होंने लोगों को समझाया कि खान-पान की शुद्धता से विवेक जागता है और विवेक ही सम्यग्ज्ञान का फल है। हेय-उपादेय बुद्धि से मोह-ममत्व का नाश होता है, जो कालान्तर में मोक्षमार्ग की सीढ़ी बन जाता है।

आत्मोन्मुखी बाबा

एक समय बाबा ने सहारनपुर की ओर विहार करने का विचार किया। नियत समय पर विहार कर, जैसे ही आगे बढ़े और यह समाचार सहारनपुर पहुँचा तो सहारनपुर में हर्ष की लहर दौड़ गई। मार्ग में जहाँ भी बाबा के कदम पड़े, लोगों ने उनका भाव-भीना स्वागत कर, स्वयं को धन्य माना। धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न करने की प्रेरणा करते हुए बाबा ने भक्तों को कहा–देखो! आहार, निद्रा, भय और मैथुन में जीवन तो सभी प्राणी बिताते हैं, परन्तु मनुष्य-जीवन तभी सार्थक होगा जब लोग खान-पान में शुद्धता रखें और संयम से जीवन बितायें। खान-पान की शुद्धता से जीवन में पवित्रता आती है। बाबा के वचनों से प्रभावित अनेक लोगों ने नियम ग्रहण किए और संयम से रहने का वचन दिया।

ज्यों-ज्यों बाबा के कदम सहारनपुर की ओर बढ़ रहे थे। सहारनपुर समाज की उत्सुकता बढ़ रही थी। लोगों ने बाबा के स्वागत के लिए अभूतपूर्व तैयारी का स्वप्न संजो रखा था। बाबा जैसे ही, नगर के निकट आए। दर्शनों के लिए जन-सैलाब उमड़ पड़ा। जय-जयकार के नारों से आकाश गूंज उठा।

सहारनपुर पश्चिम उत्तरप्रदेश का प्रमुख नगर है। यहाँ जैनों की अच्छी-खासी जनसंख्या भी है, जो धर्मनिष्ठ एवं श्रद्धालु हैं। लोगों को विश्वास था कि अब धर्म-ज्ञान की अमृत-वर्षा का लाभ मिलेगा। साथ ही, बाबा का कौन सा चमत्कार यहाँ होगा, यह कौतूहल भी था।

नगर में पहुँचने पर, भारी स्वागत देखकर बाबा को लगा कि काश!

ऐसा ही उत्साह आत्म-कल्याण और लोगों के दुःखदर्द दूर करने में हो तो समाज के साथ-साथ देश की दशा भी सुधार जाय। धर्म के प्रति लोगों का अनुराग और भक्ति देखकर जहाँ संतोष हुआ, वहीं लोकरूढ़ि में जकड़ी समाज की स्थिति से खेद भी हुआ। बाबा ने लोगों को समझाया कि भैय्या! मृत्यु-भोज समाज और व्यक्ति के लिए एक अभिशाप है। जिसका जन्म होता है उसका मरण भी होता है। यह तो जीवन की अन्तिम परिणति है। प्रियजन की मृत्यु से मोह के कारण व्यक्ति और उसका परिवार पहिले ही दुःखी रहता है, उस पर तेरहवीं पर मृत्यु-भोज की अनिवार्यता उसके कष्ट को दोगुना कर देती है, इस पर भी समाजिक बंधन और रूढ़ि के कारण जैसे भी बनता है, इसकी व्यवस्था का भार वह उठाता है। जरा सोचें! कि शरीर की एक पर्याय नष्ट हो जाने के बाद तेरहवीं से गत जीव को क्या लाभ होता है? क्या परिवार को कोई ढ़ाढ़स मिलती है? कतई नहीं, मात्र इससे मानसिक संताप ही बढ़ता है। अतः इस गैर जरूरी लोक-रूढ़ि को बंदकर देने में ही समाज की भलाई है।

और भी विचार करें! क्या मृतक की अस्थियों को गंगा में प्रवाहित करने से उसको मुक्ति मिल सकती है? अरे भैय्या! मुक्ति तो मिथ्यात्त्व-राग-द्वेष के परिणामों को दूर करने से होती है। इसी तरह श्राद्ध से भी मृतक को कोई सन्तुष्टि नहीं मिलती, और तो और यदि आप ऐसा सोचते हों कि वर्ष में एक बार श्राद्ध करने से अपने पूर्वज या सगे सम्बन्धियों के ऋण से उऋण हो गए तो संसार में कोई ऐसा जीव ढूंढ़ लो जो वर्ष में एक बार आहार ग्रहण करके वर्ष भर तृप्त रहे तो इसे करने में कोई हर्ज नहीं, परन्तु हमें क्या, सबको मालुम है कि ऐसा कोई जीव इस संसार में नहीं मिल सकता। देव गति में ही यह व्यवस्था है। इस संसार में तो ढूंढे से भी नहीं मिल सकता। फिर, क्या कोई यह बता सकता है कि मृत-जीव ने किस पर्याय में जन्म लिया है? और जो हम मृतक को स्वर्गवासी कहते हैं, वह तो लोक-व्यवहार है। यदि यह मान भी लिया

जाय कि उसने स्वर्ग में जन्म लिया है तो देवों के तो औदारिक शरीर होता नहीं और हमारे जैसी भूख भी नहीं लगती।

बाबा की बातों का लोगों पर पूरा असर हुआ। पंचायत बुलाकर समाज ने निर्णय किया कि अब तेरहवीं पर मृत्यु भोज नहीं होगा। न श्राद्ध किया जायगा और न ही अस्थि विसर्जन के लिए गंगा जाने की बाध्यता होगी। समाज के इस निर्णय से बाबा को संतोष हुआ।

ध्यानस्थ हुए बाबा

एक दिन श्री मन्दिर जी में बाबा ऐसे ध्यानमग्न हुए कि उन्हें समय का ध्यान ही न रहा। सभी संकल्पों-विकल्पों से रहित आत्म केन्द्रित अवस्था में पहुँचने का वे प्रयास कर रहे थे। मन्दिर के किवाड़ बंद करने का समय आंने पर जब माली ने देखा कि बाबा ध्यान में लीन हैं, तो सोचने लगा कि यदि बाबा को रोकता हूँ तो ध्यान-भंग होता है और मन्दिर के किवाड़ समय पर बंद नहीं करता हूँ, तो व्यवस्था भंग होती है। इसी दुविधा में वह सेठ जम्बूप्रसाद जी के यहाँ पहुँच गया और उन्हें सारी स्थिति बता दी।

सेठ जम्बूप्रसाद सहारनपुर के सिरमौर थे। उनकी वाणी में एक विशेष प्रकार की कशिश थी। दृढ़विश्वासी धुन के पक्के रईस थे। पर, रईसों के शौकों से उनका दूर का भी वास्ता न था। कालेज के दिनों में भी नियमित स्वाध्याय-पूजन करते थे। अभी हाल में ही, कौटुम्बिक विवाद में पं. मोतीलाल नेहरु को वकील नियुक्त करके स्टेट के स्वामित्व को प्राप्त करने से भी उनकी ख्याति थी। धर्म निष्ठ, विनम्र और सेवाभावी तो थे ही। समाज में उनकी ख्याति का कारण श्री सम्मेद शिखर के सन्दर्भ में उनकी घोषणा भी थी–'सारा समाज सो जाय, कोई साथ न दे, तब भी मैं लडूंगा।'

माली से सारी बात जानकर, बाबा के प्रति श्रद्धा और उत्सुकता कारण

स्वयं सेठजी मन्दिर जी पहुँच गए। बाबा को ध्यान में आरुढ़ देखकर, जम्बूप्रसाद जी उनको एकटक निहारते रह गए। ध्यान में खलल देना उचित न समझ, कुछ देर इंतजार करना उचित समझा और वे वहीं बैठ गए। थोड़ी देर बाद, बाबा ने ध्यान खोला तो पाया, सामने सेठजी बैठे हैं। विनय से सेठ जी ने कहा बाबा जी। मन्दिरजी का बंद करने का समय हो गया है। बाबा ने कहा–सेठजी! मन्दिर बंद करवा दो। आज तो मुझे यहीं बैठना है। मुझे न कहीं जाना है और न ही कुछ लेना है। यह कहकर बाबा फिर ध्यान में लीन हो गए। माली को मन्दिर बंद करने को कहकर सेठजी लौट गए।

सायंकाल जब मन्दिर खोला गया तो दर्शनार्थियों ने देखा कि बाबा अब भी ध्यान में हैं और ध्यान में लीन बाबा की इस स्थिति को देखकर विस्मित हुए। अब तक उन्होंने किसी ऐसे संत को नहीं देखा था जो इतने लम्बे समय तक ध्यान-अवस्था में बैठ हो। लोग यह सोच ही रहे थे कि सन्ध्या-सामायिक का समय देख, बाबा ने ध्यान खोला और मन्दिर जी से बाहर चले गए। प्रातः आहार के लिए उठे ही न थे। रात्रि-विश्राम कर, प्रातःकाल होते ही, सहारनपुर से विहार कर गए।

लोगों को जैसे ही मालुम पड़ा कि बाबा विहार कर गए हैं, तो जो जहाँ और जिस अवस्था में था–उनके दर्शन को दौड़ पड़ा। लोग तरह-तरह की शंका-आशंकाओं में घिरे हुए सोचने लगे कहीं हमसे कोई भूल तो नहीं हो गई। किसी ने उनका अपमान तो नहीं कर दिया। सेठजी भी आए, उन्होंने भी बाबा से विनयपूर्वक पूछा बाबा! ऐसा तो नहीं कि आप कल की बात से नाराज होकर विहार कर रहे हैं। बाबा ने कहा–सेठजी! भला आप लोगों से नाराज होकर मैं अपना भाव क्यों बिगाड़ूँ। फिर, आप सभी ने जो आदर-स्नेह और भक्ति प्रकट की है। उससे मुझे विश्वास है कि आपका और पूरे समाज का हित होगा। आप लोगों की धर्म के प्रति ऐसी ही लगन बनी रहे यही मेरी भावना है। बाबा की यह बात सुनकर लोगों

के दिल में उठ रही शंका-आशंकाओं पर विराम लगा। भला, 'संत कब एक जगह ठहरते हैं' यह सोचकर लोगों ने उनसे आशीर्वाद लिया और वापस आ गए। बाबा कुछ भक्तों के साथ आगे बढ़ गए।

रामपुर पहुँचकर कुछ दिन वहाँ रुक और लोगों को धर्म-कर्म करने की प्रेरणा की। रामपुर में लाला बारूमल थे, जो बाबा के विशेष भक्त थे। स्वभाव से धर्मभीरु, गुरुसेवा में आगे रहने वाले, ककरौली के श्री हरद्वारी लाल के वंशज थे, जो अब रामपुर में ही व्यापार कर रहे थे। बाबा के आगमन से उन्हें अपार हर्ष हुआ।

शाश्वत क्षेत्र सम्मेद शिखर की वन्दना

विहार करते-करते एक दिन उनके मन में शाश्वत निर्वाण भूमि श्री सम्मेद शिखर जी की वंदना का भाव जागा। मन में जागे इस पवित्र-भावना को अमल में लाते हुए, सम्मेद शिखर की ओर विहार कर दिया। मार्ग में बस एक ही संकल्प और भाव आता कि ऐसी भूमि की वंदना बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती है, जिस भूमि से तीर्थंकरों के साथ-साथ करोड़ों-करोड़ मुनियों ने निर्वाण प्राप्त किया हो। वहाँ की भूमि स्पर्श करने से निश्चित ही, मेरा भी जीवन सफल हो जायगा।

मधुवन में सिसाने गाँव से कुछ लोग भी वंदना करने पहुँचे थे। उनमें से कुछ बाबा के भक्त थे और उनमें लाला धनसिंहमल भी थे। उनसे बाबा का पूर्व-परिचय था। बाबा ने कहा लाला! आज वंदना को चलते हैं। मौसम की स्थिति देखकर झिझकते हुए लाला ने कहा--बाबा! आज तो बहुत गर्मी है, ऐसे में यात्रा करना कठिन होगी, कल चलेंगें। बाबा ने कहा--लाला! कल क्यों, आज ही चलते हैं शुभकार्यो को टाला नहीं करते और अशुभ को करने में जल्दबाजी नहीं करते। रही, मौसम की बात तो उसकी चिंता मत करो। यात्रा के समय देखना-बादल घिर आयेंगें। ठण्डी बयार बहेगी, पसीना भी नहीं आवेगा। किसी को कोई कष्ट न होगा।

बाबा के वचनों के प्रभाव से परिचित लालाजी ने अपने सहयात्रियों को तैयार किया और वंदना के लिए निकल पड़े। बाबा का साथ उन्हें आश्वस्त कर रहा था। कुछ दूर चले ही थे कि उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जो आकाश आग उगल रहा था, अब बादलों से अटा पड़ा है। ठण्डी हवा के झोंके चल रहे हैं।

बाबा की कही बात सच होती है। इसका एक और प्रमाण देख लोगों की खुशी का ठिकाना न रहा। बाबा इन सबसे बेखबर आगे बढ़े जा रहे थे। वंदना करने का भाव कुलांचे भर रहा था। रास्ते में, जहाँ भी रुकते, लोग उनके संयम-तप से तपा कुंदन सा मनोहारी रूप देखकर तृप्त हो जाते। थकान भी महसूस न होती।

इस प्रकार सकुशल वंदना कर जब वापस डेरे पर आये तो लोग बाबा की ही चर्चा में व्यस्त हो गए।

चिर-काल से सम्मेद शिखर की वंदना करने की इच्छा-पूर्ति होने पर बाबा को आत्म-तोष भी हुआ।

मेरठ में पुनरागमन

कुछ समय बाद, बाबा लालमन दास का फिर मेरठ आगमन हुआ। श्रीमन्दिर जी में नित्य स्वाध्याय, सामायिक और आत्मचिंतन में रत बाबा जी को अपने गृहनगर का मोह कभी जागा हो या किसी पर उन्होंने किसी को अपनी इच्छानुसार करने को कहा हो। ऐसी स्थिति कभी नहीं आयी, पर धर्म-कर्म और संयम से जीवन जीने की प्रेरणा न की हो, यह भी कभी देखने-सुनने को न मिला। जो भी उनके दर्शन को आता, उससे यह अवश्य कहते कि भैया कुछ नियम-संयम को धारण कर मनुष्य जीवन को सार्थक बना लो। बाबा के आगमन से प्रसन्न लोग उनके दर्शन करने अवश्य जाते। एक दिन मुंशी लखपतराय उनके दर्शन को आए तो बाबा ने उनसे कहा मुंशी जी! अब तो उम्र के चौथे पायदान पर कदम रखने जा

रहे हो। कम से कम इस अवस्था में तो नित्य देवदर्शन और रात्रिभोजन न करने का नियम ले लो। मुंशीगिरी करते-करते तो जीवन यों ही जा रहा है।

मुंशी बोले बाबा! आप कह तो ठीक रहे हैं। पर क्या करूं? काम ही कुछ ऐसा है, फिर मन में कभी ख्याल भी नहीं आया। आपकी बात मान रहा हूँ और रात्रिभोजन न करने का नियम लेता हूँ, पर पानी-पीने की छूट रखूंगा क्योंकि खुश्की हो जाती है। सामने नित्य देवदर्शन करने का नियम लेने की बात इसलिए न कह सके कि बाबा कहीं यह न सोचें की कैसा जैनी है, जो नित्य देवदर्शन भी नहीं करता लेकिन मन ही मन यह निर्णय भी ले लिया कि अब नित्य देव-दर्शन करूंगा।

बाबा ने मुंशी जी की चतुराई को समझ लिया। प्रकट में बोले ठीक है, पर पानी देखभाल कर पीना और नियम लिया है तो इसका पालन भी सावधानी से करना। आशीर्वाद लेकर मुंशी जी लौट गए।

एक रात मुंशी जी को प्यास की वेदना हुई। गला सूखने लगा। बेचैनी में, पास रखी सुराही से पानी गिलास में उड़ेला ओर जैसे ही पीने को तैयार हुए कि बाबा की बात ध्यान में आ गई "ठीक है, पानी देखभाल कर पीना"। तुरन्त प्रकाश में गिलास को ले गए देखा कि पानी में अनेक चीटियाँ तैर रही हैं। बाबा को परोक्ष नमस्कार करते हुए सोचने लगे कि यदि बाबा ने उस दिन नियम न दिलाया होता तो आज विपत्ति में पड़ जाता। बाबा कितने हितैषी हैं? ऐसी ही न जाने कितनी बाबा की कही गई बात ध्यान में आने लगी। 'मनुष्य जीवन में यदि संयम धारण नहीं किया तो यह पर्याय पाकर क्या किया। घर-गृहस्थी के कार्य तो चलते ही रहते हैं। व्रती-जीवन वाला ही अहिंसा धर्म का पालन कर सकता है' आदि आदि, सोचते-सोचते आंख लग गई सुबह होने पर, बाबा के प्रति मुंशी जी ने आभार व्यक्त किया और सारी बात बतायी तो बाबा ने कहा—देखो! थोड़ा सा नियम कितना फल देता है। इसी तरह व्रतों को

बढ़ाने की कोशिश करते रहना। जीवन सुखी होगा।

सन् 1893 (संवत् 1950) में बाबा का विहार रिवाड़ी की ओर हुआ। बाबा के आगमन से रिवाड़ी समाज में हर्ष और उल्लास का वातावरण छा गया। बाबा के दर्शन कर उनकी दीर्घकाल की इच्छा पूर्ति हुई। रिवाड़ी में लोगों की भक्ष्य-अभक्ष्य आहार की अज्ञानता से दु:खी होकर बाबा सोचने लगे कि यदि यही हाल रहा तो उन्हे गर्त में जाने से कोई नहीं बचा सकेगा।

दयालु बाबा ने रिवाड़ी समाज के प्रमुख लाला मक्खनलाल को बुलवा लिया। साधु संतों पर वे अपार श्रद्धा-भक्ति रखते थे। धर्म पर उनका विशेष अनुराग था। बाबा ने उनसे बात की और पंचायत बुलाने को कहा। बाबा की आज्ञा मानकर पंचायत बुलाई गई। उसमें बाबा ने लोगों को समझाया कि जैन कुल-परम्परा का हमें हर हाल में ध्यान रखना चाहिए। इससे न केवल हमारा जीवन सुधरेगा, बल्कि आगे आने वाली पीढ़ी को नसीहत भी मिलेगी। अभक्ष्य और कंदमूल का सेवन करना न तो हमारी परम्परा है और न ही इसके बिना हमारा काम रुक सकता है। जीवन को संयमी बनाना है तो सबसे पहले इनका त्याग कर दें। बिरादरी के सामूहिक आयोजनों में इसका सेवन बिल्कुल भी न किया जाय। तभी हमारी आन-बान बनी रहेगी। बाबा के वचनों का प्रभाव हुआ और पंचायत ने एक स्वर से सामूहिक आयोजनों में अभक्ष्य और कन्दमूल को निषिद्ध घोषित कर दिया।

सन् 1897 (संवत् 1954) में लाला मक्खनलाल को समाज में फैली काज (तेरहवीं) प्रथा की ओर बाबा ने ध्यान दिलाया। लाला गणपतराय, रामजसमल, मुरलीधर, रामदयाल, ओंकारदास, मोहरसिंह, चुन्नीलाल आदि साधर्मी लोगों के साथ मक्खनलाल बाबा के पास आए। बाबा ने उनको समझाते हुए कहा—काज प्रथा जैन परम्परा के अनुसार ठीक नहीं है। यह मिथ्यात्त्व का मार्ग है। इस प्रथा के कारण बेमतलब लोगों को परेशानी

उठानी पड़ती है। फिजूलखर्ची होती है सो अलग। इससे न तो कोई लौकिक लाभ है और न ही परमार्थ की कोई सिद्धि होती है। सभी प्रमुख लोगों ने बाबा की बात पर गौर किया और काज-प्रथा बंद कर दी गई।

यों तो बाबा के मन में प्राणि-मात्र के प्रति वात्सल्य भाव था, पर रेवाड़ी जैन समाज पर उनका कुछ विशेष स्नेह हो गया था।

प्रकट हुआ चमत्कार

सन् 1899 (संवत् 1956) में, दिल्ली के एक सद्गृहस्थ सज्जन ने बाबा से श्री सम्मेद शिखर की वंदना उनके साथ करने की प्रार्थना की। बाबा ने विचार किया कि उम्र के इस पड़ाव में आकर इस अवसर का लाभ लेना ही चाहिए, फिर अवसर मिले या न मिले, यह सोचकर सहमति दे दी। बाबा जी के साथ वंदना करने का सुयोग पाकर सद्गृहस्थ श्रावक फूले ने समाए और तैयारी कर श्री सम्मेद शिखर की ओर चल पड़े।

श्री सम्मेद शिखर में सामायिक का जब समय हुआ तो बाबा एक शिला पर विराज गए और सामायिक करने लगे। सामायिक करते कुछ समय ही बीता था कि एक काले सर्प ने आकर उनके पैरों पर जोर से डंक मार दिया। यह भान होते ही, बाबा जी पार्श्वप्रभु का ध्यान करने लगे। मन ही मन निश्चय कर डाला कि जब तक सर्प स्वयं आकर विषपान नहीं कर लेता, तब तक मैं इस स्थान से तिलभर भी न हिलूंगा। इस तरह ध्यान में लीन बाबा अडोल और निष्कंप बन गए। दो रात और दिन बीत गए। पर बाबा अपने संकल्प के अनुसार उसी शिला पर ध्यानस्थ रहे। पंच-परमेष्ठी के गुणों का स्तवन करते रहे। इस बीच भगवान् पार्श्वनाथ पर कमठ द्वारा किए गए उपसर्गों का ध्यान भी आया। सामायिक में उपसर्ग समझकर शांतचित्त होकर ममत्त्व परिणामों को छोड़ने का प्रयास करते रहे। समता बुद्धि से स्थिति को सहन-करते करते, तीसरे

दिन सर्प आया और उसने सारा विष खींच लिया। तब कहीं बाबा ने समाधि खोली और पहाड़ से नीचे उतरे।

इस बीच सद्गृहस्थ साथियों के मन में अनेक शंकाओं ने जन्म लिया फिर, यह सोचा कि पार्श्वप्रभु की शरण में बाबा को कोई हानि नहीं हो सकती। यह सोचकर बाबा के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। बाबा के आते ही, पार्श्वनाथ और बाबा की जयकार से आसमान गूंज उठा। जब उन्हें वस्तुस्थिति की जानकारी हुई तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। बाबा के इस अद्भुत चमत्कार पूर्ण-घटना से लोग श्रद्धा से बाबा के चरणों में झुक गए।

सहोदर ने किया मन्दिर निर्माण

बाबा लालमन दास की प्रेरणा से सहोदर भाई ईशरीमल के मन में श्री जिनमन्दिर बनवाने का भाव जागा। कोशिश करके ईशरीमल ने छत्ते के पास ही मन्दिर के लिए उपयुक्त जमीन भी देख ली। इस जमीन का स्वामित्त्व श्री महावीर प्रसाद के पास था। जब उन्हें यह मालुम पड़ा कि जमीन का उपयोग मन्दिर बनवाने में किया जायगा, तो उन्होंने खरीद मूल्य पर ही यह जमीन ईशरीमल को दे दी। ईशरीमल ने महावीर प्रसाद के इस सौजन्य पूर्ण सहयोग के लिए धन्यवाद दिया।

महावीर प्रसाद धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। उनकी भाभी संजोदेवी थी। संजोदेवी ने वैधव्य को पूर्व कर्म का उदय मान कर, पूरी तरह जीवन को धर्म-कर्म में समर्पित कर रखा था। संजोदेवी ने मन्दिर-निर्माण का ईशरीमल का संकल्प सुना तो प्रसन्नता से सभी साधर्मी जनों को प्रीति-भोज दिया और दान देकर अपने द्रव्य का सदुपयोग भी किया। मेरठ आकर सातवीं प्रतिमा के व्रत धारण किए और आर्यिका बनकर आत्म कल्याण में प्रवृत्त हुईं।

मन्दिर का कार्य तेजी से चल पड़ा और समय पर पूरा भी हो गया।

मन्दिर में सुंदर संगमरमर की वेदी और फर्श के निर्माण से मन्दिर की शोभा देखते ही बनती थी। अब प्रतिष्ठा की बारी थी, परन्तु असाता कर्म के उदय से ईशरीमल बीमार पड़ गए। अपनी इस स्थिति से दु:ख तो बहुत हुआ, परन्तु स्वयं को ढ़ाढ़स बंधाकर ईशरीमल ने अपने विशेष सहयोगी लाला गोपीनाथ को बुलाकर कहा–प्रतिष्ठा का कार्य किसी सूरत में नहीं रुकना चाहिए। लाला महावीर प्रसाद, धर्मदास, नेमचन्द्र, शम्भुदयाल, जयन्तीप्रसाद, रिषभदास आदि ने मन्दिर निर्माण में सक्रियता दिखाई थी। अत: उन्हीं के सहयोग से प्रतिष्ठा-कार्य को पूरा करने की जिम्मेदारी लाला गोपीनाथ ने उठा ली। गोपीनाथ के निर्देशन में प्रतिष्ठा-कार्य में सभी तन-मन से सहयोग करने लगे।

प्रतिष्ठा का समय नजदीक आते ही, आस-पास के लोगों का जमावड़ा हुआ। सहारनपुर से लाला प्रद्युम्नकुमार, हुलासराय ने भी इस प्रतिष्ठा में भाग लेना गौरव की बात मानी। दिल्ली के अनाथाश्रम के छात्रों ने भी पं. मक्खनलाल के नेतृत्व में भाग लिया। छात्रों ने जहाँ अनेक-धार्मिक एवं सांस्कृतिक-कार्यक्रमों के माध्यम से समा बांधा, वहीं पं. मक्खनलाल जी ने पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के महत्त्व को समझाया। अन्तिम दिन फेरी के लिए शाहदरा से घोड़ों के और सरधना से बैलों के रथ की व्यवस्था की गई थी। भारी धर्म-प्रभावना के साथ पंचकल्याणक कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इससे ईशरीमल के मन को अतिशय संतोष हुआ।

पायी नरजन्म की सफलता

संसार में, बृद्धावस्था को हेय माना जाता है और हर मनुष्य की यह इच्छा होती है कि वह इस अवस्था को प्राप्त न हो, परन्तु पर्याय की उत्पत्ति और विनाश की स्थिति में जो समभाव रखता है, वही आत्मजयी होता है। बाबा को भी देह की अवस्था में परिवर्तन दिखाई दे रहा था, परन्तु अपने संयम के प्रति वे दृढ़ थे। एक बार अचानक उनके दांतों में भयंकर पीड़ा हुई। यह पीड़ा असह्य थी, लेकिन वह उन्हें संयम मार्ग से

न डिगा सकी। वे आहार में छिलके वाली उड़द की दाल लेते थे। वैद्य और लोगों की सलाह थी कि यदि बाबा इसे छोड़ दें तो उन्हें पीड़ा से राहत मिल सकती है। लोगों ने मिल-जुलकर उनसे प्रार्थना की तो बाबा ने कहा—सुनो भैय्या! मुझे उड़द की दाल से कोई-राग नहीं है, किन्तु इससे पीड़ा होती है तो इसका त्याग हरगिज नहीं करुंगा और अब तो आहार में केवल उड़द की दाल ही लूंगा और कुछ नहीं। तन विरक्त तो थे, साथ ही कष्ट उन्हें डिगाने में असमर्थ थे। स्व-पर कल्याण ही जीवन का एक मात्र उनका ध्येय था। सो इस मार्ग पर दृढ़ बने रहने का निरन्तर प्रयास करते।

धीरे-धीरे आत्मोत्पुखी बाबा अब 75 वर्ष के हो चले थे। धर्म की अलख जगाते-जगाते शरीर क्षीण हो चला था, पर बाबा रत्नत्रय की आराधना में कभी प्रमादी नहीं हुए। विहार करते-करते दिल्ली के कूंचा सेठ के मन्दिर में प्रवास कर रहे थे। देह की नश्वरता की बात जितनी लोगों को समझाते उससे कहीं अधिक स्वयं को समझाते। लोगों को कहते कि देखो! इस शरीर की दशा। इसकी कितनी ही सेवा कर लो। यह एक न एक दिन साथ छोड़ देता है। इस शरीर और इन्द्रियों की सेवा में ही तो यह जीवन खप जाता है, पर यह साथ देने को राजी नहीं होता।

दिल्ली प्रवास में ही, सब्जी मण्डी स्थित दिगम्बर जैन मन्दिर में रुके। बाबा के गिरते स्वास्थ्य को देखकर जब लोगों ने वैय्यावृत्ति करनी चाही तो बाबा ने साफ मना कर दिया। यहाँ तक कि औषधि लेना भी उन्हें गवारा न था। उनकी सोच बन चुकी थी कि काया और माया के चक्कर में त्याग नहीं हो पाता। काली उड़द की दाल आहार में लेने से पीड़ा भी होती, जिसे वह परीषह समझते। धीरे-धीरे काया क्षीण होने लगी। यह किसी को ज्ञात ही न हो सका कि बाबा अब समाधि-मरण के लिए क़दम उठा चुके हैं। इसीलिए न तो वे वैय्यावृत्ति की आज्ञा दे रहे हैं और न ही उपचार की अनुमति।

मन में असीम दृढ़ विश्वास के साथ रत्नत्रय की आराधना करते 2 आखिर सन् 1935 में एक दिन वह आया जब बाबा ने इस नश्वर देह को त्याग दिया। देह-त्याग के पूर्व अपने अन्तिम सम्बोधन में लोगों को उन्होंने चेताया था—देखो! देह को अन्तर्मुहूर्त में ही अग्नि को समर्पित कर देना और ध्यान रहे कोई कफन का टुकड़ा घर न ले जावे अन्यथा आग लग जायगी। स्व-पर हित चिंतक बाबा को यह आभास हो गया था कि देह-त्याग का समय आ चुका है।

बाबा के देहावसान की खबर आग की तरह फैल गई। सारा समाज शोक में डूब गया। एक सच्चे रहनुमा के जाने से विशेष खालीपन का बोध होने लगा। अन्ततः लोगों ने स्वयं को ढाढ़स बंधाया कि बाबा तो कभी मर ही नहीं सकते। उनकी रोशनी से हमारा जीवन हमेशा प्रकाशित होता रहेगा।

अन्तिम यात्रा प्रारम्भ हुई। आनन-फानन में जुटे हजारों लोगों ने श्रद्धा के साथ बाबा के नश्वर देह को चन्दन, घी, कपूर की अग्नि में समर्पित कर दिया। जय-जयनाद से आकाश गुञ्जित हो उठा।

भक्ति का आवेग भला कहीं किसी से थम सका है। सो, लोग भूल गए कि बाबा ने कफन के टुकड़े ले जाने से मना किया है। भावावेश में, कुछ लोगों ने कफन का जो टुकड़ा हाथ लगा वह लेकर चलते बने। आखिर, वही हुआ, जो बाबा ने कहा था। जहाँ भी कफन का टुकड़ा पहुँचा, वही आग लगी।

बाबा के त्याग-तपस्या से जो वचन सिद्धि उन्हें प्राप्त हुई थी, उन्होंने कभी भी स्वार्थ के लिए उसका प्रयोग किया हो, ऐसी कोई मिसाल नहीं मिलती। सच्चे अर्थों में उन्होंने धर्म-कर्म की वह गंगा बहायी थी, जिसमें स्नान कर आज भी स्व-पर कल्याण की ओर प्रवृत्त हुआ जा सकता है। तप की अग्नि में कुन्दन सा दमकता चेहरा अब भी लोगों के लिए

प्रेरणा-स्रोत है।

बाबा के देह त्याग के बाद मेरठ और आस-पास के इलाके में उनके परम भक्त श्री सुमतप्रसाद, जयचन्द, प्रेमचन्द भागचन्द्र आदि ने बाबा के द्वारा दिखाये वीतराग जिनधर्ममार्ग की प्रभावना में सारा जीवन अर्पित कर दिया।

वस्तुतः सांसारिक षद्कर्म में लिप्त जीवन निवृत्ति की ओर कदाचित् ही प्रवृत्ति कर पाता है। जिसने भी निवृत्ति की ओर कदम बढ़ाये, वह आदर्श स्थिति को प्राप्त करने में सफल हुआ और संसार उस मार्ग का अनुकरण कर अपने जीवन को थोड़ा-बहुत सफल मानता है। पू. बाबा लालमनदास का जीवन भी प्रवृत्ति और निवृत्ति का जीवन्त उदाहरण है। उनका आलोकमय जीवन हम सभी को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने में सक्षम है।

बाबा के अनन्य भक्त सलावा के लाला मित्रसेन थे। उनके पुत्र श्री प्रकाशचन्द्र और श्री शीलचन्द्र को बाबा के जीवन से तप-संयम मय जीवन की प्रेरणा मिली थी। अब दिल्ली में दोनों भाईयों का निवास स्थान है। बाबा के जीवन से उन्हें जो शिक्षा मिली उसका पालन करते हुए जीवन-यापन में संलग्न हुए। लाला प्रकाशचन्द् जी धर्मनिष्ठ जीवन व्यतीत करते हुए 1990 में ध्यानस्थ अवस्था में दिवंगत हुए।

सदगृहस्थ धर्म का पालन न्याय पूर्वक जीविकोपार्जन पर निर्भर करता है, इस बात की गांठ बांधकर मनुष्य-जीवन को सार्थक बनाने में श्री शीलचन्द्र जी जौहरी आज भी संलग्न है। गांधीवादी विचारों और परम्परागत मूल्यों का संरक्षण करते हुए वे श्री भारतवर्षीय अनाथरक्षक जैन सोसायटी दरियागंज के 15वर्षों तक ट्रस्टी भी रहे और प्राचीन श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन पंचायत के पंच भी। साथ ही, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासमिति के अध्यक्ष पद को भी उन्होंनें सुशोभित किया। गत तीस वर्षों

से वह अखिल भारतीय सर्राफा एसोसिएशन के अध्यक्ष हैं। कुन्दकुन्द भारती के ट्रस्टी हैं। इन पदों का दायित्व पूरी निष्ठा और ईमानदारी से निभाया। धर्म एवं सामाजिक उत्थान के कार्यों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेकर समाज को दिशा देने की ललक, उनमें अब भी विद्यमान है। बाबा की कही गई बात कि धर्म से चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। इस-दृढ़ विश्वास के साथ वे जीवन को सार्थक बनाने में रत हैं। लोग बाबाजी के जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर सकें, इस ध्येय से उनके चित्र जगह-जगह प्रदर्शित किए और अब भी प्रयासरत रहते हैं कि लोग धर्मनिष्ठ होकर स्व-पर कल्याण में प्रवृत्त हों।

बाबा लालमन दास जी के हजारों भक्त आज भी उनका पुण्य स्मरण कर दिन प्रारम्भ करते हुए सुख-शांति का अनुभव करते हैं। सत्य ही है, कि संत का कभी अंत नहीं होता। वह तो हमेशा हृदय में विराजता है।

●●